ॐ

निर्मोह राजा की कथा

भूमिका

जो जो दुनियां में दुःख होता है, मोह करके होता है। मोहरूपी दुःख की निवृत्ति और किसी उपाय से नहीं होती। एक वैराग्य से ही मोह नाश होता है क्योंकि मोह से ही तृष्णा लोभ आदि आसुरी गुणों की अनन्त शाखें हृदयरूपी वृक्ष में फैल जाती हैं और आत्म आनन्द भी राग वासना से ढका रहता है।

राग से रहित हृदय उज्ज्वल प्रकाशमान होता है। मोह करके ही अति दीन कङ्गाल जीव संसार में दुःख भोगता हुआ छूट नहीं सकता, पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती और पुनः पुनः मृत्यु के दुःखो से भी नहीं छूट सकता। जब तक पूर्ण सुख निरावर्ण न होवे तब तक सर्व दुःखों की निवृत्ति रूप असल शांति नहीं हो सकती। पूर्ण सुख की प्राप्ति में अज्ञान के सहित राग अर्थात मोह ही प्रतिबन्धक है। राग की निवृत्ति वैराग्य के बिना नहीं होती। वैराग्य तब होता है जब वैराग्यवान पुरुषों की संगत और अभ्यास करे अथवा वैराग्यवान पुरुषों की कथा सुने जैसे लड़ाई में कायर पुरुष भी सूरमाओं के दर्शन और बहादुरी को देखकर अथवा सूरमाओं की बातें सुनकर कायर भी सूरमा होकर युद्ध करने लग पडता है और शत्रु को मारकर जय को प्राप्त होता है, वैसे ही अनादि कालका जीव मोह करके ज्ञान साधना से कायर हुआ तृष्णा आदि दुःखो से कृपण कङ्गाल हुआ अपने स्वरूप के अज्ञान से संसार के दुःखों से दुखी पुनः पुनः मृत्यु को अनुभव करता हुआ यह कायर जीव भी जब सत्सङ्गरूपी रण में जाता है तब जागता है। जैसे घोड़ा रण में जाकर सोया हुआ जागता है तैसे ही अज्ञानरूपी नींद से सोया हुआ जीव भी सतसंगरूपी रण में जाता है तब जागता है, और धर्मी पुरुषों की कथा सुनकर धर्म में तत्पर हो जाता है, वैराग्यवानों के दर्शन से अथवा वैराग्यवानों की कथा सुनकर हृदय में वैराग्य अवश्य पैदा हो जाता है और ज्ञान के साधन में तत्पर हो जाता है, दुखों का मूल अज्ञान के सहित मोह को नाश करता है और सत्संग रूपी रण में जिज्ञासु रूपी सूरमा वैराग्य रूपी शस्त्र से राग का नाश करता है। मोह शत्रु के नाश होने से काम क्रोध आदि आसुरी संस्कार सब नाश हो जाते हैं। इससे इस मोहजीत राजा की कथा सुनकर अभ्यास से राग रहित हुआ जीव ज्ञान से मोक्ष सुख को पाता है सइ से जिज्ञासु जन मोह शत्रु को जीतने के लिये श्रद्धा सहित मोहजीत राजा की कथा को श्रवण करें।

—सन्त हरनामदास

॥ ॐ ॥

साखी प्रमाण

अर्थात्

निर्मोह राजा की कथा

दोहा—सर्व शुद्ध सो आत्मा, सर्व कल्पनातीत।
सत आत्मानन्द को, नमो होय नित चीत ॥१॥
मनुष्य पशु सब सत्ता के, सत्ता वृक्ष पषाण।
देव दैत सत्ता सभी, सर्प कीट होय भान ॥२॥
सत्ता के सब शहर हैं, सत्ता जगत तमाम।
सत्ता पूरण अचल है, कल्पित जिसमें नाम ॥३॥
सत्ता ही निराकार है, होय सफुर्ण अकार।
फुरना नासे ज्ञान से, सत्ता शेष अपार ॥४॥
नमस्कार सतगुरु को, चरण कमल सुख खान।
चेतन शुद्ध स्वरूप से, व्यापक मध्य जहान ॥५॥

प्रथम निर्मोहराजा ब्रह्मवेत्ता महात्मा के पास जाता था। एक दिन राजा ने महात्मा से प्रार्थना कि, हे भगवन् इस दुःख रूप संसार से किस प्रकार कल्याण होवे सो उपाय बतलाये। तब महात्मा ने मन में विचार किया। ये राजा है इसके अन्तःकरण में मल विक्षेप आदि दोष हैं, इसलिये इस को अभी निर्गुण सरूप का उपदेश करना योग्य नहीं इस वास्ते महात्मा राजा को कहते भये कि व्यवहारों से उदासीन होकर बारह वर्ष अभ्यास करो।

तब निर्मोहराजा ने बारह वर्ष अभ्यास किया । और फिर ज्ञान के वास्ते उन्हीं ब्रह्मवेत्ता महात्मा गुरुजी के पास राजा जाता भया । तब महात्मा ने परीक्षा के वास्ते ताड़ना कि । तब राजा उठकर चला आया, मगर रातभर राजा के मन में क्षोभ होता रहा । सुबह विचार करने लगा—हे मन तेरे ही में दोष है, सन्त तो सब पर कृपा करते हैं । इस प्रकार राजा ने अपना चित्त शान्त किया । फिर दूसरे दिन महात्मा के पास राजा गया, तब महात्मा ने पूछा चित्त कैसे रहा । तब राजा ने कहा जी आप की ताड़ना का सारी रात क्षोभ मन में होता रहा, प्रातःकाल चित्त शान्त हुआ तब हाथ जोड़ कर कहने लगा, हे भगवन् इस दुखरूप संसार की निवृत्ति के कारण ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करो, मैं आपका दास हूँ जी, आप दया के समुद्र हो जी, दास पर कृपा कीजिये तब महात्मा ने कहा अभी तेरा चित्त मलीन है बारह वर्ष और अभ्यास कर । तब राजा ने बारह वर्ष ब्रह्मचर्य के सहित और अभ्यास किया । तब महात्मा ने एक भक्त को कहा, राजा की परीक्षा करनी है । जब राजा बाज़ार में जावे तब राजा के ऊपर एक टोकरा राख का डाल देना।

जब राजा बाजार में जा रहा था, उस भक्त ने चौबारे से राजा के ऊपर राख का टोकरा डाल दिया । तब राजा को बहुत क्षोभ हुआ, जब जाकर स्नान किया और बैठ कर विचार करने लगा कि शरीर भी राख है, राख के ऊपर राख पड़ गई तब क्या हुआ ? इस प्रकार मन को शान्त करता हुआ राजा महात्मा के पास गया, दण्डवत प्रणाम कर के बैठ गया ।

महात्मा ने पूछा—राजा चित्त कैसा रहा । तब राजा ने कहा महाराजजी स्नान करते तक क्षोभ रहा फिर विचार से चित शांत हुआ

तब महात्माजी कहने लगे अभी तुम्हारे चित्त में मलीनता है, बारह वर्ष और अभ्यास करो । तब राजा ब्रह्मचर्य को धारण कर के इन्द्रियों का संयम करता हुआ बारह वर्ष और अभ्यास करने लगा । जब छत्तीस वर्ष विधिपूर्वक अभ्यास सम्पूर्ण हुआ तब राजा का चित्त अत्यन्त शुद्ध हुआ ।

तब महात्मा जी ने परीक्षा करने के लिये लड़कों से कहा कि जब राजा जाता हो तब उसके ऊपर मिट्टी डाल देना । तब लड़कों ने राजा के ऊपर बहुत सी मिट्टी डाली परन्तु राजा को कुछ भी क्रोध अथवा क्षोभ न हुआ । तब राजा स्नान करके शांत चित्त से विचार करने लगा, अपने मन से कहने लगा कि—'हे मन! शरीर भी मिट्टी है मिट्टी के ऊपर मिट्टी पड़गई तो क्या हुआ ? हे मन तेरा अभी कसूर है तेरे साधन में अभी देर है । ऐसे विचार करता हुआ शांत चित्त से राजा महात्माजी के पास जाकर दंडवत प्रणाम करके बैठ गया । तब महात्माजी ने राजा का चित्त अत्यन्त शुद्ध देख कर राजा को ज्ञान का प्रकाश कर दिया । राजा को अपने पूर्णस्वरूप का अपरोक्ष निश्चय और जगत का अत्यन्त अभाव निश्चय हुआ तब महात्मा की आज्ञा से राजा राज करने लगा । निर्मोह राजा ने अपने सर्व कुटुम्ब को ज्ञान कर दिया क्योंकि सर्व कुटुम्ब के साधन पूर्वजन्म के परिपक्व थे इसलिये सर्व सम्बन्धी ज्ञानवान होते भये ।

तब राजा का लड़का एक दिन बाहर जंगल में एक तपस्वी की कुटी पर गया । नमस्कार करके तपस्वीजी के पास बैठ गया तब तपस्वी ने पूछा, 'तुम किस के बेटे हो।' तब लड़के ने कहा कि, 'मैं निर्मोह राजा का बेटा हूँ जी ।' तब तपस्वी कहने लगा कि,

'तुम झूंठ बोलते हो, गृहस्थ में राजा होकर कैसे निर्मोह हो सकता है।' तब लड़के ने कहा, 'हमारा सारा कुटुम्ब ही निर्मोही है। हे तपस्वीजी! आप जाकर सबकी परीक्षा कर लो। तब आप को निश्चय हो जावेगा।' तब तपस्वी निर्मोह राजा के कुटुम्ब की परीक्षा लेने के लिये शहर को गये। राजा का लड़का कुटी पर बैठ गया। जब तपस्वी महल के दर्वाज़े पर पहुंचा तब राजा की बांदी मिली। उसको शेर के ज़रिये से लड़के के मरने की खबर सुनाई।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन तू चेरी श्याम की, बात बतावें तोहि।
कुंवर बिनास्यो सिंह ने, आसन पड़ियो मोहि॥

अर्थ—हे बांदी राजकुमार को शेर ने मार डाला है, और लोथ कुटी पर पड़ी है।

॥ बांदी का वचन ॥

दोहा—ना मैं चेरी श्याम की, ना कोई मेरा श्याम।
चार दिना के वास्ते, सुनो ऋषि अभिराम॥

'हे तपस्वीजी! न मैं किसी की टहलन हूं न कोई मेरा स्वामी है चार दिन का मेला झूठा स्वप्न के समान है। जन्म—मरण, संयोग—वियोग इन्द्रजाल की तरह सब झूठा है।'

हे तपस्वीजी! मैंने इस संसार के बड़े बड़े दुख देखे हैं आपको सक्षेप कर सुनाती हूं आप सुनिये! इस दुःखरूप ससार के पदार्थ देखते २ नाश हो जाते हैं, मैं स्वप्न की तरह जानती हूं इसी से मेरे को किंचितमात्र भी शोक नहीं हुआ।

मैं पहिले एक सौदागर की स्त्री थी, मेरा पति परदेश चला गया, मैं एक दिन नदी पर स्नान कर रही थी तो एक राजा घोड़े

पर सवार हुआ जा रहा था, उस कामी राजा की नज़र मेरे ऊपर पड़ गई, वह कामी राजा मुझ को घोड़े पर चढ़ा कर अपने शहर को ले गया, मैं पतिव्रत धर्म पालन करने के लिये एक वर्ष का संकेत कर के अलग महल में रहने लगी, पीछे मेरा लड़का रुदन करता हुआ परदेश को चला गया मेरे पति के माता पिता भी मर गये, जब मेरा पति घर में आया तो घर को बरबाद देख कर रुदन करता हुआ लोगों से पूछने लगा। लोगों ने कहा तुम्हारी स्त्री को एक राजा जबरदस्ती से ले गया है, तुम्हारे माता—पिता मर गये हैं और तुम्हारा लड़का कहीं परदेश चला गया है तब ऐसी हालत सुनते ही मेरे पति बहुत दुखी होकर रोने लगे और मेरी तलाश करते हुये मुझ को महलों में आ मिले और बहुत रोने लगे।

तब अपने पति से मैंने कहा कि मैं आप के धर्म में हूँ, आप श्मशान भूमि में जा बैठिये मैं रात को आपके पास आजाऊंगी। तब मेरा पति श्मशान में जा बैठा, उसी वक्त उसको सांप ने डस लिया और वह मर गया। और जब मैं रात को श्मशान भूमि में गई; वहां जाकर देखा कि मेरा पति मरा हुआ पड़ा है मैं बहुत दुखी होकर रोती हुई जंगल को चली, तब हमारे को चोर मिले, वह मेरे जेवर छीन ले गये! और मैं निराश होकर भगवान् के आगे बारम्बार पुकार करती भई। हे भगवन्! हमारा कष्ट निवारण कीजिये! मैं अनाथ आप की शरण हूँ! इस प्रकार भगवान् का चिन्तन करती हुई चली जाती को दो रोज हो गये। तब एक शहर में जा पहुँची, दो रोज़ की भूखी कुछ खाने को मिला नहीं। तब लोगों ने कहा शहर से बाहर नदी किनारे अन्न का क्षेत्र है, वहां तुम को भोजन मिल जावेगा। तब मैं वहां जाकर क्षेत्र से भोजन लेती भई। भोजन किनारे पर रखकर नदी में स्नान करने

लगी तो पानी जोर से चला रहा था, हमारा शरीर निर्बल था, नदी में बह गई । तब आगे एक गूजर ने मेरे को निकास कर बहिन भावना से घर ले गया । तब गूजर के घर में दूध बेचती रही, हे तपस्वी जी ! अब मैं निर्मोह राजा की बांदी हूँ । मैंने ऐसे अनेक दुःख देखे हैं, अब राजकुमार का क्या शोक करू । ज्ञान के प्रताप से मोह नहीं रहा, सब ससार झूंठा है । हे तपस्वीजी ! ऐसा विचार करके मेरे को मोह नहीं हुआ । तब तपस्वी अपने मन में कहने लगा यह तो बांदी है इस को क्या मोह होगा, लड़के की स्त्री को ज़रूर मोह होगा । उस की परीक्षा करने के लिये तपस्वी स्त्री के महल में जाता भया ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन तू बाला सुन्दरी, अबला जोबन बान ।
देवी बाहन बलि मल्यो, तुम्हारो श्री भगवान ॥

अर्थ—'हे सुन्दरी तुम्हारा पति को शेर ने मार दिया है ।'

॥ स्त्री का वचन ॥

दोहा—तपिया पूर्व जन्म की, क्या जानत यह लोग ।
मिले कर्मवश आन हम, अब विधि कियो वियोग ॥

अर्थ—'हे तपस्वी पूर्वजन्म के कर्मों को लोग नहीं जानते क्योंकि पिछले कर्म से मेरा पति के साथ मेल हुआ था, अब लेना देना भुगत चुका है । अब ब्रह्मा ने वियोग कर दिया तो इस में क्या अफसोस है, कल्पित शरीरों के कर्मों के अनुसार अवश्य संयोग से वियोग होना ही था ।'

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे सुन्दरी ! तैंने पति के मरने का कुछ भी शोक नहीं किया । तेरा चित्त बड़ा कठोर है, पतिव्रता धर्म तेरा वृथा है ।

दोहा—बेमुख नारी पति से, बानी कटु अलाय ।
दुख पावे इस लोक में, अन्त नर्क में जाय ॥
आज्ञा पाले पति की नारी शील सुभाय ।
सुख पावे इस लोक में, अन्त मुक्ति को पाय ॥
रोगी वृद्ध जड़ अंध जो, तृष्णा क्रोध महान ।
पति ऐसा जिस होय जो, करत नारि अपमान ॥
पावे दुःख अनन्त सो, जम पकड़े जब आन ।
निश्चय नर्कसो भोगती, कभी न हो कल्यान ॥
पतिव्रता जग चार हैं, भाषे वेद पुरान ।
उत्तम मध्य कनिष्ट जो, चौथी अधम पिछान ॥
उत्तम नारि पतिव्रत सो, जिसके मन बस होय ॥
व्रत नेम सब धर्म जो, प्रेम चरण में सोय ॥
मन बाणी काया सभी, प्रेम पती में मान ।
दूजा पुरुष न देखती, सुपने में भी आन ।
जग में मध्यम नार जो, पर पति ऐसे जान ।
बड़ा बाप सम छोटा सुत, भाई आप समान ॥
विचारे धर्म कनिष्ट तिय, मत कुल लागे दाग ।
अधमनार पर पति बचे, बिन अवसर भय लाग ॥
छल करती जो पति से, परपुरुषों में प्रीति ।
रहे कल्प शत नर्क में, तुच्छ विषय में चीत ॥
बिन साधन से पाइ है, पति सेवा से मोक्ष ।
पति धर्म को छोड़ के, कभी न होवे तोश ॥
दुखपावे सौकोटि जन्म, होइ जो पति प्रतिकूल ।
विधवा होवे तरुन में, कहते वेद मूसल ॥

अति अपावन नार जो, करे पति की सेव ।
चार वेद यश गावते, परम गति को लेव ॥

अर्थ—जो स्त्रियां पति की आज्ञा नहीं मानतीं हैं और पति से लड़ाई करती हैं वह नर्क में दुःख भोग भोगती हैं और इस लोक में बुराई होती है, जो नारियां पर पुरुष से व्यभिचार करती हैं वह तपे हुये लोहे के थम्बों (खम्बों) से लगाकर जलाई जाती हैं, जो स्त्रियां पति की आज्ञाकारी हैं, वह अपने घर के अन्दर ही बैठकर समय गुज़ारती हैं, बाहर नहीं निकलतीं, आंखों से भी परपुरुष को नहीं देखतीं, चलते समय सदा जमीन की तरफ ध्यानर खती हैं, पति को ईश्वररूप समझ कर हर रोज प्रातःकाल उठ कर नमस्कार-करती हैं, पति के पवित्र चर्णामृत का आचमन करती हैं और सदा भगवान भावना से सेवा पूजन करती हैं, उन पतिव्रता स्त्रियों का इस लोक में यश होता है और बैकुण्ठ लोक में सुख भोगती हैं ! जो स्त्री पति के साथ सती हो जाती है उसको साठ करोड़ वर्ष सूर्य्यलोक में सुख मिलता है । जब यह विचार तपस्वी ने सुन्दरी को सुनाया तब सुन्दरी कहने लगी :—

स्त्री ॥ सुन्दरी का वचन ॥

'हे तपस्वीजी ! आपने पतिव्रता स्त्री के धर्म कहे हैं सो शास्त्र के अनुसार सब ठीक हैं परन्तु जो स्त्री अपने पति भगवान को उत्पत्ति नाशवाला परिछिन्न जानकर के सेवा करती है और उत्तम-लोक आदि स्वर्ग सुख की इच्छावान है उसको पति की प्रेम से सेवा श्रद्धापूर्वक करने से उत्तम लोक के सुख मिलते हैं । और जो निष्काम भावना से पतिव्रता स्त्री मुक्ति पद के पावने के वास्ते पति की सेवा श्रद्धा प्रेम से करती है, उसको पूर्ण ब्रह्मस्वरूप का

ज्ञान हो जाता है । हे तपस्वी जी मैं तो अपने पति को पूर्णब्रह्म जानकर निष्काम भाव से मुक्तिपद के लिये श्रद्धा प्रेम से सेवा करती रहती हूं और हमारा पति ज्ञानवान था, उस ने हमारे को ज्ञान कर दिया है ! अब हमारे को पति परिपूर्ण उत्पत्ति नाश से रहित चेतनरूप से दिखाई देता है, ऐसी ज्ञान भावना से नन करके मैं पति भगवान की सदा सेवा करती हूं और बाहर शरीर करके स्नान कराना, चरण धोने, भोजन खिलाना इत्यादि पति भगवान के शरीर की सेवा भी मैं दासी होकर शरीर करके करती रही हूं परन्तु वास्तव से पति भगवान मेरा स्वरूप है, मैं पति का स्वरूप हूं एक चेतन सर्व आत्मा निश्चय होने से । इस लिए ज्ञान अग्नि कर के यह देह आदि जगत भस्म हुआ है ! ज्ञान से शरीर की निवृत्ति, यही शरीर का सती होना फलरूप है मेरे को उत्तम लोक के सुख आत्म सुख—रूपी समुद्र में तरङ्गों के समान दिखाई देते हैं । इस लिए हमारे को उत्तम लोक की इच्छा नहीं है । हमारा मन पूर्ण-ब्रह्म सुख—रूप आत्मा में लीन हुआ है, हमारा पति देह से भिन्न चेतन स्वरूप हमारा आत्मा है, अजर अमर है, सर्व शरीररूपी तरङ्ग कल्पित निश्चय होने से इस कारण हमारे को शोक नहीं हुआ । हे तपस्वीजी ! जिन स्त्री को ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ वह स्त्रीयां अपने को और पति को देह मात्र ही जानती हुई मोह के वश में पति के वियोग से इस प्रकार विलाप करती हैं ।

दोहा—जम पकड़ कर लेगये, घरकी रोवत नार ।
पति मुसाफिर हो गया, कौन लेवेगा सार ॥

लघु सुख संजोग में, बिछड़े दुखि हज़ार ।
बेटा बेटी मित्र जो, रोवत जार बेजार ॥

हे तपस्वीजी ! जिन स्त्रियों को देह अभिमान है वह पति के शरीर के वियोग से रुदन करती हैं, जो पति की सेवा करती है वह सदा सुख भोगती हैं, जो पति को दुख देती हैं वह सदा नरक भोगती हैं ।

दोहा—अनेक योनियां पावते, स्वर्ग नर्क बहु रङ्ग ।
बारम्बार दुख भोगते, देह अभिमान जो सङ्ग ॥

अर्थ—जो अज्ञानी जीव देह का अभिमान करते हैं वह अनेक योनियां पावते हैं और मेरा देह अभिमान निवृत हुआ है इस विचार से पति के शरीर की मृत्यु का शोक नहीं किया । यह तो पूर्व के कर्म से कल्पित शरीरों का संयोग होता है। जब पिछला लेना देना खतम हो जाता है तब वियोग हो जाता है । इस पर मैं आप को एक उदाहरण सुनाती हूं जिस के सुनते ही सर्व मोह शोक नाश होते हैं ।

एक कर्मलम्ब ब्राह्मण था उसके घर में बेटा पैदा हुआ । कर्मलम्ब ने पत्री देखी तो यह मालूम हुआ कि इस ने हमारा कर्ज़ा देना है । तब कर्मलम्ब ने बेटे का नाम ऋणदत्त रख दिया । परन्तु कर्मलम्ब को यह चिन्ता हो गई, कि जब कर्जा उतर जायेगा तब यह बेटा मृत्यु हो जावेगा । जब लड़का बड़ा हुआ तब सर्व विद्या पढ़ गया और कर्मलम्ब को यह भय था कि जब किसी सभा से या किसी राजा से धन ले आया तब उसी वक्त लड़का मृत्यु हो जावेगा तब अपने बेटे को कहता भया, किसी सभा या किसी राजा से धन कभी मत लेना ।' एक दिन कर्मलम्ब दूसरे शहर की सभा में चला गया तब पीछे से एक ब्राह्मण विदेशी राजा के पास आ गया तब ब्राह्मणों की सभा लगी, शास्त्रार्थ होने लगे और ऋणदत्त भी सभा में चला गया । शहर के ब्राह्मण तो हार गये और कर्मलम्ब

के बेटे ऋणदत्त ने उस ब्राह्मण को जय कर लिया तब ऋणदत्त के ऊपर शहर के ब्राह्मण प्रसन्न हुये और राजा भी बड़ा प्रसन्न हुआ । ऋणदत्त को राजा ने पास बैठा लिया तब राजा ने दो थाली मोहरों की ऋणदत्त के आगे भेंट रखीं । ऋणदत्त ने एक थाली तो विदेशी ब्राह्मण को दी जो हार गया था और दूसरी थाली मोहरों की शहर के ब्राह्मणों को बांट दी । तब राजा ऋणदत्त के ऊपर बहुत खुश हुआ । ऋणदत्त ने कुछ भी अङ्गीकार नहीं किया, भोजन भी अपने घर आन कर खाया । तब राजा अपने घर जाकर ऋणदत्त लड़के का जयजयकार का समाचार अपनी रानी को सुनावते भये और ऋणदत्त की बहुत उपमा करी । तब रानीने राजा को कहा कि 'अपनी सुन्दर कन्या ऋणदत्त लड़के को दान दीजिये, हमारी सुन्दर कन्या सुख पावेगी ।' तब राजा रानी की बात स्वीकार कर के उसी वक्त सगाई का सामान तैयार कर के कर्मलम्ब ब्राह्मण के घर भेजता भया । बारह गांव का पट्टा कर दिया और चार हीरे, पांचसौ मोहरें और वस्त्राभूषण इतना धन राजा भेजता भया । ऋणदत्त को सगाई का सामान मिला, तब ऋणदत्त अपनी माता को देता भया तब उसी वक्त ऋणदत्त मृत्यु को प्राप्त होता भया । माता बेटे की मृत्यु को देखकर बहुत रोने लगी और ऋणदत्त का पिता कर्मलम्ब भी बाहर से आ गया । धन की प्राप्ति और बेटे की मृत्यु देख कर रोने लगा और कहता भया । 'शास्त्र की बात आज दिन सफल हो गई कि बेटा हमारा कर्ज देकर परलोक को चलागया और लोग भी कर्मलम्ब ब्राह्मण के पास जाकर अफसोस करने लगे । उधर राजा की कन्या पति की मृत्यु सुन कर विचार करने लगी, जिसका पति मृत्यु होगया उस स्त्री का दुनियां में जीना वृथा है इसलिये मृत्यु ही हो जाना श्रेष्ठ है। ऐसा विचार

कर उस राजा की कन्या ने भी प्राण त्याग दिये । तब कर्मलम्ब ब्राह्मण और उस की स्त्री दोनों अपने सुन्दर बेटे के वियोग से संसार को दुःखरूप जान कर सर्व धन का दान करके भजन करने के वास्ते वन को जाते भये इस प्रकार स्त्री उदाहरण सुन कर तपस्वी को कहती भई । हे तपस्वी जी, ऐसे ही जब परस्पर लेना देना खतम हो जाता है तब उसीवक्त जीवों का वियोग हो जाता है ।

विचार से देखिये तो आत्मा का कभी वियोग नहीं होता । जन्म मृत्यु शरीरों के धर्म हैं, आत्मा सब का एक है और परिपूर्ण है । हमारे पति ने इस प्रकार हमारे को ज्ञान सिखाया हुआ है । आत्मा जन्म–मरण से रहित है, सर्व का स्वरूप है, अजर–अमर–अखन्ड है, कर्म वायु से कल्पित शरीररूपी तरङ्गों के जन्म–मृत्यु होते रहते हैं, कल्पित झूठे जड़ शरीरों के संयोग–वियोग से शोक करना वृथा है, आत्मस्वरूप हमारा और पति का एक है सो अमर है, उसका कभी जन्म–मृत्यु नहीं होता है । हे तपस्वी जी इस विचार से पति के शरीर की मृत्यु सुन कर हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । अब तपस्वी कहता भया 'हे देवी ! पिछले जन्म ऋणदत्त और कर्मलम्ब कौन थे और कैसे कर्जा लिया था यह सब समाचार हमारे को सुनाइये ।' तब स्त्री कहती भई 'हे तपस्वीजी ! उन सभावाले ब्राह्मणों का राजा वा रानी का, राजा की कन्या का और कर्मलम्ब व ऋणदत्त का इन सब शरीरों का पिछले जन्म का वृतान्त मैं तुम्हारे को सुनाती हूँ तुम सुनो–' एक वैश्य था वह अपने कुटुम्ब सहित तीर्थयात्रा करता २ मथुरा के पास आया तब जंगल में एक तपस्वी की कुटिया के पास रात को निवास करता भया । सुबह हुई तो अपनी स्त्री को कहने लगा कि आपां बनारस को जाना है, रास्ते में चोरों का डर है, ठग चोर रास्ते में बहुत हैं इसलिये कुछ धन

इस तपस्वी के पास अमानत रख दीजिये । तब स्त्री ने कहा–'सत वचन, हे भगवन् आपने बहुत अच्छा विचार किया है । तब उस वैश्य ने चार हीरे, पांचसौ मौहरें और बारह गांव का पट्टा इत्यादि धन तपस्वी जी के पास अमानत रख दिया और कहता भया कि मैं बनारस की यात्रा करके यह धन आप से लेता जाऊँगा । तब तपस्वी ने केवल परोपकार समझकर धन को रख लिया और अपनी चेली को कहा इस धन को अपनी कुटिया में रख लीजिये । तब दासी अपनी कुटिया के अन्दर वैश्य का धन रखती भई और वैश्य बनारस को चला गया । तब एक महीने बाद तपस्वी बीमार होता भया, तब तपस्वी अपने विद्यार्थीयों से पूछता भया, वैश्य का धन कहाँ रखना चाहिये । हमारा काल नजदीक आगया है । तब विद्यार्थीयों ने कहा आप के पास जो ऋषि बैठा है इसको दे दीजिये, यह ऋषि मथुरा में सेठ के पास रख देवेगा । तब तपस्वी ने सब धन दासी से लेकर ऋषि को दे दिया । ऋषि ने मथुरा के सेठ के पास धन को अनामत रखदिया तब तपस्वी मृत्यु होता भया और इधर से वैश्य यात्रा करता हुआ उसी तरफ कुटुम्ब सहित काल के वश होता भया और मथुरा का शेठ और शेठानी भी कुछ काल पाकर मृत्यु होते भये और तपस्वी की दासी और विद्यार्थी और ऋषि वह सभी कुछ काल पाकर अपने २ समय पर सब मृत्यु को प्राप्त होते भये । हे तपस्वीजी वह वैश्य जो बनारस का यात्री था सो मर कर कर्मलम्ब ब्राह्मण होता भया, तपस्वी कर्मलम्ब ब्राह्मण का बेटा ऋणदत्त होता भया और मथुरा का शेठ सेठानी राजा रानी होते भये और दासी मरकर राजा की कन्या हुई और विद्यार्थी मरकर शहर के ब्राह्मण बने और ऋषि मरकर विदेश का ब्राह्मण हुआ जो हार गया था । हे तपस्वीजी इस प्रकार अपने २ कर्म के अनुसार

सबका संयोग होकर फिर वियोग हो जाता है, कर्मों की आश्चर्य गति है लखी नहीं जाती। तब तपस्वी ने पूछा हे देवी, वह राजा की कन्या मरकर कहां गई और ऋणदत्त मरकर कहां गया। तब स्त्री कहती भई, वह राजा की कन्या मैं हूं और ऋणदत्त हमारा पति है अब हम दोनों को ज्ञान हुआ है अगाड़ी हम दोनों का जन्म नहीं होगा, दोनों ब्रह्मस्वरूप में अभेद हुये हैं निस्संशय पूर्णस्वरूप का अपरोक्ष हुआ है। तब तपस्वी धन धन करता हुआ लड़के की बहन के पास जाता भया और मन में विचारा कि बहन को भाई की मृत्यु सुनकर मोह जरूर होगा, तिसकी परीक्षा के लिये बहन को कहता भया।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—राजसुता सुन बात मम, करे जो दिलको शोर।
वीर विनाश्यो बने में, सिंह शूर में तोर॥

अर्थ—हे राजा की बेटी एक बात सुन जिस के सुनते ही तेरे दिल को बड़ा शोक होजावेगा, तेरे भाई को बन के बीच शेर ने मार डाला।

॥ बहन का उत्तर ॥

दोहा—बन में मरते जीव बहु, रचे जो ईश अनन्त।
शोक करूं मैं कौन का, जाओ कुटी तुम संत॥

अर्थ—हे तपस्वीजी, इस संसार बन में ईश्वर के रचे हुये जीव अनेक ही मरते जन्मते हैं मैं कौन का शोक करूं, तुम अपनी कुटी में जाकर भजन करो।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तपस्वी कहता भया बहनों को वीर प्यारे होते हैं, हे देवी तुमने भाई की मृत्यु का किस विचार से शोक नहीं किया, कोई दृष्टान्त कहो।

॥ बहन का वचन ॥

हे तपस्वी जी इस संसाररूपी बन में ईश्वर रचित जीवों का जन्म—मरण प्रवाह चला आता है, अथवा हे तपस्वीजी जैसे समुद्र में वायु से अनन्त तरङ्ग उत्पत्ति, लय होते हैं, तैसे परमात्मारूपी समुद्र में माया वायु से अनन्त जीवरूपी तरङ्ग, उदय, लय होते रहते हैं सो सब झूठ हैं, शोक करना वृथा है। हे तपस्वीजी! अब दृष्टान्त सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक नाश होवे है।

जैसे किसान खेती बीज करके फिर उसकी पालना करके छोटी बड़ी को काट लेता है, जैसे उसके काटने से अफसोस कोई नहीं करता ही ईश्वररूपी किसान अनन्त जीवरूपी खेती पैदा करके फिर पालना तैसे करता है, फिर अपनी मर्जी से कालरूपी दरांती से काट लेता है, छोटे बड़े जीव कालरूपी दरांती से काटे जाते हैं याने परमात्मा सब का मालिक है जीव का अफसोस करना वृथा है। हे तपस्वीजी ऐसे विचार से हमारे को भाई के मरने का शोक नहीं हुआ अथवा हे तपस्वीजी! और उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक निवृत्ति होवे हैं।

एक माई शील स्वभाव से अपने पति की सेवा करके पति को प्रसन्न रखती थी। वह अपने पति को कहती भई, 'हे भगवन्! भजन करने से ही कल्याण होता है, और भजन करने की युक्ति महात्मा से मिलती है, आपकी आज्ञा होवे तो महात्मा के पास चली जाउं' तो पति ने कहा, 'एक वृद्ध महात्मा बाहर कुटी में रहते हैं उनके पास जाकर दर्शन भी कर और भजन करने की युक्ति और भजन भी श्रद्धा से पूछ।' तब माई अपने पति की आज्ञा से प्रसाद भेंट लेकर शील स्वभाव से महात्मा के पास जाती भई। दर्शन

करके नम्रता से हाथ जोड़ कर विनती करती भई, 'हे भगवन् ! कल्याण कैसे होवे ।' तब महात्मा बोलते भये 'हे देवि ! अपने पति की आज्ञा में रहना और सदा भगवान् का भजन करना ये तुम्हारे लिये कल्याण का मार्ग है ।' तब माई कहती भई, हे भगवन् ! आप कृपा कर के भजन भी बताइये, और भजन करने की युक्ति भी बताइये । तब महात्मा जी ने दया करके माई को भजन बतादिया और युक्ति कहते भये, पिछली रात एक पहर अर्थात् चार-बजे स्नान करके नीचे आसन लगाकर सुबह के आठ बजे तक एक आसन पर अचल बैठकर भजन करना चाहिये और एक पहर अथवा तीन घण्टा शाम को एक आसन पर समाधान होकर भजन करना और भजन का समय सम्पूर्ण किये बिना किसी के साथ बात नहीं करनी आसन से उठना भी नहीं, और निष्काम भावना से केवल भगवान की प्रसन्नता अर्पण भजन करना । तब माई श्रद्धापूर्वक महात्माजी की आज्ञा से रोज ऐसे ही विधिपूर्वक अभ्यास करती भई । जब बहुत काल भजन करते होगया तब पाप नाश होने से चित्त अत्यन्त समाहित होता भया । तब माई को पूर्व के जन्मों की खबर होती भई, तब एक रोज उसका दो वर्ष का बेटा उस माई के सामने खेल रहा था, माई भजन में तत्पर थी उस लड़के के पास काला सर्प आता भया, उस सर्प ने लड़के को काटलिया तब लड़का मृत्यु होता भया । परन्तु उस माई ने सर्प को देखा भी, मगर अपने नियम पालन के कारण अपना आसन और भजन को छोड़ा नहीं तब एक पड़ौसिन उस के घर में आई, सर्प तो भाग गया उस पड़ौसिन ने निश्चय किया कि सर्प के काटने से ही लड़का का मृत्यु हुआ है । तब वह पड़ौसिन मोह वश होकर रोने लगी तब तक लड़के की माई भी भजन सम्पूर्ण करके लड़के के पास आती

भई ! तब पड़ौसिन ने कहा हे बहिनजी ! तुम्हारा यह एक ही सुन्दर बेटा था जिसको तुम्हारे सामने सर्प ने काटा तुमने बेटेकी मृत्यु से रक्षा क्यों नहीं करी, तुमको मोह क्यों नहीं हुआ, तब लड़के की माता कहती भई, इस लड़के के और हमारे परस्पर सम्बन्ध होते हुए सात जन्म होचुके हैं कभी ये माता बनजाता है मैं बेटा बन-जाती हूँ, कभी मैं माता बनती हूँ ये बेटा बनजाता है, कभी ये पहिले परलोक चला जाता है कभी मैं इससे पहिले परलोक चली जाती हूँ । इस प्रकार अब इसका मृत्यु पहिले हुआ है । समय पर हमारी भी मृत्यु होजावेगी, मुसाफिरोंवाला मेल है इस वास्ते हे बहिनजी ! भजन करने से ही जीव चौरासी के चक्कर से छूटता है याते उत्पत्ति नाशवाले शरीरों के वियोग से मोह करना वृथा है अथवा परमात्मा का हुकम ऐसे ही था इस क्षण में सर्प की मौत से लड़का मरना ही था । इस विचार से हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । तब माई का विचार सुनकर पड़ौसिन शान्ति को प्राप्त होती भई—तब बहिन कहती भई हे तपस्वीजी ! जैसे उस माई को भजन के प्रताप से बेटे की मृत्यु का मोह शोक नहीं हुआ तैसे हमारे को ज्ञानके प्रताप से भाई की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ । काहेते जैसे वृक्ष के नीचे मुसाफिर एकत्र होकर बिछुड़ जाते हैं तैसे भाई, पिता बेटा, पति, आदि सम्बन्धी मुसाफिरों की तरह इकठ्ठे होकर बिछुड़ जाते हैं । याते सम्बन्धियों के वियोग का शोक त्याग कर भगवान का भजन और धर्म ही दिन रात करना चाहिये और विषय भोगों से उपराम होना चाहिये । भोगों से बुद्धि मलीन हो जाती है सात्विक पुरुष तो विषय भोग त्याग कर के भजन में ही सुखी होते हैं । काहेते जिसके मन में विषय की तृष्णा अधिक है वह ही दुखी परम कङ्गाल है, और जिसके मन में सन्तोष है वह ही परम सुखी धनवान है ।

दोहा—कामधेनु मन शांत जो, नन्दन वन सन्तोष ।
अमृत सङ्गत सन्त की, होय ज्ञान से मोक्ष ॥

भाव ये है :—जब सन्तोषरूपी सूर्य उदय होता है तब इच्छारूपी रात्रि का अभाव हो जाता है । और त्रिलोकी के राजा की इच्छा निवृत्त ना भई तो वह भी दरिद्री है और जो निर्धन है और सन्तोषवान है वह सबका ईश्वर है जो अप्राप्य वस्तु की इच्छा न करे और अनइच्छित प्राप्त हुये इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष से रहित शास्त्रानुसार वर्तना इसका नाम सन्तोष है, अथवा तृष्णा का अभाव ही सन्तोष है । सन्तोष ही परमपद है, सन्तोषवान सदा आनन्दमय है जो सन्तोष से रहित है, तिसके हृदय में दुःख चिन्ता उत्पन्न होते रहते हैं जैसा आनन्द सन्तोषवान को होता है ऐसा आनन्द अष्ट सिद्धि के ऐश्वर्य करके भी नहीं होता और अमृत के पान किये से भी ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द सन्तोषवान को होता है । सदा शान्त रहता हैं, जैसे पक्का आम सुन्दर होता है सबको प्यारा लगता है तैसे सन्तोषवान पुरुष सबको प्यारा लगता है, और स्तुति करने योग्य है । जिस पुरुष को संतोष प्राप्त हुआ है तिस को परम-लाभ भया है जहां संतोष है तहां इच्छा नहीं रहती और संतोष-वान भोग में दीन नहीं होता वह उदार आत्मा है सर्वदा आनंद कर तृप्त रहता है । संतोष से परम शोभा होती है, जो संतोषवान पुरुष है तिसको देवता, मनुष्य सब नमस्कार करते हैं और धन्य धन्य कहते हैं । और सत्सङ्ग से सर्व दुःख नाश होते हैं, बुद्धि उज्ज्वल होती है और संतों के दर्शन से पाप नाश हो जाते हैं, संतों के उपदेश को धारण करने से अज्ञान मोह निवृत होजाता है, संतों की सेवा करने से चार पदार्थ प्राप्त होजाते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, याते सन्तों की सङ्गत, सेवा, दर्शन, श्रद्धा प्रेम से

सदा करनी चाहिये । याते हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो अज्ञान रूपी मोह से ही पाप पुण्य कर्म बनते हैं जिस मोह के प्रताप से ऊँट, बैल, गदहे भार उठाये फिरते हैं और दुःख पाते हैं । सर्प कीट, पतङ्ग आदि कनिष्ट योनियों में बारम्बार मोह करके ही भ्रमते हैं और वृक्ष आदि जीव कुल्हाड़े से काटे जाते हैं, ये सब मोह का ही प्रताप है । जो अज्ञानी जीव देखने में आते हैं सब मोहरूपी जाल में फंसे हुये हैं इस मोहरूपी दलदल से निकल नहीं सकते । देवता, दानव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीव मोह करके तीनों लोकों में कर्म वश भ्रमते हुए वारम्बार जन्म मरण को प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्र में नदियाँ स्वाभाविक ही प्राप्त होती हैं तैसे ही अज्ञानी जीवों को मोह और तृष्णा करके स्वाभाविक ही कष्ट प्राप्त होते रहते हैं । जो स्वर्ग में कल्पवृक्ष है वह तो इच्छा करने से अनेक प्रकार के पदार्थ देता है परन्तु ये रागरूपी ऐसा कल्पवृक्ष है कि बिना इच्छा से ही अनेक प्रकार के कष्ट जीवों को देता ही रहता है, जो जीव भजन भक्ति नहीं करते, राग से सदा ही विषय, भोगों का यत्न करते रहते हैं, वह नर्क की अग्नि में लकड़ी की तरह जलेंगे । मोह करके अनन्त कष्ट पावेंगे और जो सात्विकी पुरुष निराश होकर भजन भक्ति प्रेम से करेंगे वह सर्व दुखों से छूट कर दोनों लोक में सुखी होवेंगे और जो मोह से चोरी, जूआ, हिन्सा, झूठ, निन्दा, लोभ आदि पाप करने वाले जीव हैं वह बड़े भयानक कष्ट पावेंगे जैसे सर्प के काटे से, शस्त्र के घायल से, कोल्हू में पेले जाने से, अन्ध कूप में गिरने से, पाषाण की वर्षा कर चूर्ण होने इत्यादि जो बड़े बड़े भयानक कष्ट हैं सो पापी पुरुष भोगते हैं, याते पापी पुरुष का सग कभी ना करना चाहिये ।

पापी के पाप का निरूपण करने से वोही पाप निरूपण करने वाले को प्राप्त हो जाता है याते पापी पुरुष की निन्दा ना करे और पापी पुरुष का त्याग करदेना चाहिये । अपने शरीर पर कष्ट सहन करे परन्तु खोटे पुरुष की सङ्गत कभी ना करे । यद्यपि बड़ा बुद्धिमान भी होवे परन्तु विषयों में राग करने से लघुता को प्राप्त होजाता है और विषयों के उपराम होने से लघु पुरुष भी पूजने योग्य बड़ा होजाता है और जैसे कीट आदि अपवित्र मूत्र आदि मैले स्थान में प्रीतिपूर्वक प्रसन्न रहते हैं तैसे सकामी पुरुष भोगी जीव भी अपवित्र मैले जो विषय भोग हैं तिन में प्रीति करते हुये प्रसन्न रहते हैं । किसी पुण्य में मिला जो मनुष्य शरीर वा अमूल्य समय सो नाशवान भोगों में निष्फल कर देते हैं । मूर्ख तृष्णावान् भोगी पुरुषो को अन्त समय पश्चात्ताप करना पड़ेगा । सकामी पुरुषों की इच्छा के बल से ईश्वर उन को स्त्री आदि अपवित्र भोग देता है जिन के मोह से जीवों को दुःख ही होवे और जो मोक्ष की इच्छावान निष्काम पुरुष हैं तिनको भगवान पवित्र वस्तु भजन और विचार में लगा देता है तिस करके परमानन्द की प्राप्ति होवे है । हे तपस्वीजी ! जो सात्विकी निष्काम पुरुष हैं भगवान की भक्ति में लगे हुये हैं उनके लिये यह पवित्र विचार मैं तुम्हारे को सुना रही हूँ यह पुण्यरूप विचार है जिसके सुनते ही जीवों के पाप नाश होवें हैं ।

और विचार यह है कि दुपहर का सूर्य प्रकाश ना करे तो ना करे परन्तु जो सब से उदासीन होके अभ्यास करेगा तो उस की जड़ चेतन माया दासी अवश्य होवेगी । और विचार यह हैं:— कि दुखियों पर दया करनी, क्षमा धीरज आदि से चित्त शुद्ध होवे है चित्त की शुद्धता से उपरतीरूप पुण्य बढ़े है अथवा यम नियम आदि साधनों से परम सुख की प्राप्ति होवे है । और इस जगत में सुखी

दुखी सर्व जीवों को धर्म ही करना चाहिये सुखी पुरुष धर्म करेगा तो उसका सुख बढ़जावेगा । दुखी पुरुष जो धर्म करेगा तो उसका दुख नाश हो जावेगा । याते धर्म ही परम तीर्थ है धर्म ही परम तप है धर्म ही जीव का परम मित्र है धर्मी पुरुष ही परमानन्द को प्राप्त होवेंगे । जो धनको धर्म में नहीं लगाते उनका धन अग्नि से नाश हो जावेगा । राजा भी उनका धन छीन लेगा और चोर डाकू लूट लेजावेंगे । और जो पुरुष दशवां अंश धन का धर्म में लगाते रहते हैं उन के पाप नाश होने से धर्म के प्रताप से राजा दण्ड नहीं लगावेगा, अग्नि उसके धन को नहीं जलावेगी, चोर डाकू भी उस का धन नहीं लूटेंगे । जिन धर्मी पुरुषों का धन धर्म में लगता रहता है वह उत्तम पुरुष हैं धर्म में धन लग जाने से पुण्य ही शेष धन की रक्षा करता है । याते समाधान होकर धन को धर्म में लगाना चाहिये और सदा मानरहित रहना चाहिये ।

काहेते मान बड़ाई एसा गुप्त दोष है कि भगवान् की प्राप्ति में बाधा डालता है । याते मान बड़ाई का हृदय में आवेश ना होने देना चाहिये । नाशरूप पदार्थों की मान बड़ाई करना वृथा है । मान और मोह से तप का नाश होता है और अपमान से और शारीरिक कष्ट से तप की वृद्धि होती है और क्षणभङ्गुर विषय भोगों से मन की तृप्ति होवे नहीं । जैसे अग्नि में घी पाने से अग्नि और प्रज्ज्वलित होवे है तैसे विषय की प्राप्ति से मन की तृष्णा बढ़े है । जब ज्ञान से मन को ब्रह्म सुख मिल जाता है तब तृप्त हो जाता है । जैसे हाथी की खुराक एक मन अन्न है यदि उसको एक सेर खुराक दीजावे तो वह तृप्त होवे नहीं । तैसे मनरूपी हाथी भी एक सेर खुराक की तरह चौदह लोकों के भोग से तृप्त होवे नहीं, जब पूरी

खूराक ब्रह्म सुख मिलजावे तब मन तृप्त हो जावे है फिर विषय सुख की ईच्छा करे नहीं, परन्तु मन जीव का ऐसा बैरी है जो भजन से खाली छोड़ देने से भोगों की तरफ ही दौड़ता है याते मन से उल्टा चलना चाहिये मन खोटे कर्म में गेर देता है याते मन को शीत, उष्ण, तृषा, क्षुधा, आदि सहन करना चाहिये और सदा जप, तप विचार में लगाना चाहिये ।

मन अहंकार को मित्र बनाकर अनेक अनर्थ करता है और स्त्री विषय के सम्बन्ध से बल, वीर्य्य, तेज, कीर्ति, पुण्य, आयु का नाश तत्काल ही हो जाता है । याते विषय भोग से बचना चाहिये और ब्रह्मचिन्तन के बिना एक क्षण भी वृथा न जाने देवे जिस क्षण में मन ब्रह्मचिन्तन नहीं करता उस क्षण में अपने आप को मृत्यु के मुख में गेरता है । याते समाधान हो कर अनात्म चिन्तन नहीं होने देवे याते श्रद्धा से विवधानरहित सदा ब्रह्मअभ्यास करना चाहिये । कालरूपी सर्प ने जीवरूपी मेंडक को मुख में पकड़ रक्खा है जीवरूपी मेंडक भोगरूपी मच्छर की इच्छा करता है यह बड़ा आश्चर्य है ।

अज्ञानी जीवों को दुःखरूप विषयों में सुख की भ्रांति है जैसे उल्लू को रात में दिन की और दिन में रात की भ्रांति है और जैसे पतङ्गे साक्षात मृत्युरूप दीप की शिखा और लालटेन आदि को सुखरूप मान कर जल मरते हैं, वैसे ही अज्ञानी जीव विषय भोगों को सुखरूप मान कर स्त्री आदि विषय के मोह वश होकर बारम्बार मृत्यु के मुख में पड़ते हैं । उनको परलोक का ज्ञान नहीं है यही लोक उनको दीखता है भजन धर्म से शून्य होने से परमार्थ की बुद्धि नष्ट हुई रहती है जैसे पतङ्गे को सब जगह में अन्धकार ही दीखे है जहां दीपक आदि रोशनी होवे है वहाँ ही प्रकाश को सुखरूप

जानकर अग्नि में जले हैं तैसे ही बहिर्मुख अज्ञानी जीव भी सर्व स्थानों में दुख ही दुख देखे है और स्त्री, धन आदि विषय में ही सुख देखे है याते बारम्बार अज्ञानी जीव पतङ्गों की तरह क्षणभङ्गुर स्वप्न मात्र मिथ्या भोगों में प्रीति करते हुये मोह से राग-द्वेषरूपी अग्नि में दिन रात जले हैं शान्त कभी नहीं होवें है और जैसे कोई दयालु पुरुष पतङ्गों को मोह वश मृत्यु की तरफ जाने को देख कर उनको दुख से बचाने के हित से दीपक लालटेन आदि रोशनी कम कर देता है अथवा रोशनी बन्द करदेता है । परन्तु इस तात्पर्य को ना जानते हुये पतङ्गे उलटे दुखी होते हैं कि हमारी मनोकामना पूरी ना हुई तो भी रोशनी के कम करने अथवा बुझा देने वाले पुरुषों की तो उन पर बड़ी भारी दया ही समझी जाती है ।

तैसे कञ्चन कामिनी आदि विषय भोग के मोह से राग द्वेषरूपी अग्नि में अज्ञानी जीवरूपी पतङ्गे जल रहे हैं तिन के कञ्चन कामिनी आदि विषय भोग प्रारब्धवश ईश्वर की आज्ञा से कम हो जाने अथवा नाश हो जाने से जीवरूपी पतङ्गे तात्पर्य को ना जानते हुये दुखी होते हैं कि हमारी मनोकामना पूरी ना हुई । परन्तु उनके ऊपर दयालु परमात्मा की तो अत्यन्त दयाही है । काहेते विषय सुख के अभाव होने से राग द्वेष से रहित हुये सात्विकी पुरुष अधिक ईश्वर की भक्ति व भजन करते हुये परमानन्द को प्राप्त हो जाते हैं । और जैसे कोई पुरुष महान धूप कर तपा हुआ सर्प के फन की छाया में बैठ कर सुखी हुआ चाहे तो कभी नहीं होगा कष्ट ही पावेगा तैसे इन्द्रियों के विषय से कोई सुखी हुआ चाहे तो कभी नहीं होगा कष्ट ही पावेगा ।

आत्मज्ञान अथवा भगवान के भजनरूपी वृक्ष की छाया में

निवास करने से तत्काल ही सुखी होजावेगा जिन पुरुषों ने विषय की सेवना करी है सो परम दुख को प्राप्त होते हैं। मूर्ख का मन तृष्णा करके विषय की तरफ ही धावता है शान्त कभी नहीं होता जिससे अनेक जन्म दुखों को प्राप्त होता है, चाहे आकाश में तारे गिने जायें तो गिने जायें परन्तु तृष्णावान पुरुष के जन्म और दुखों का अन्त नहीं आयेगा।

जहां जहां तृष्णा है तहां तहां ही दुख है। वैराग्य और सन्तोष से तृष्णा इच्छा आदि का अभाव होवे है और तृष्णा इच्छा आदि ही दुखों का मूल है और आत्मा को आवरण करे है (अर्थात् ढके है) याते तृष्णा इच्छा आदि दुख की निवृत्ति के लिये वैराग्य और सन्तोष का सदा सेवन करना चाहिये।

जिज्ञासु उपवास आदि से इन्द्रिय निर्बल करते हैं, काहेते इन्द्रिय निर्बल होने से विचार का बल हो जाता है, परन्तु सात्विकी पुरुषों को शारीरिक कष्ट से पूर्व कृत पाप भुगत जाने से बुद्धि शुद्ध होवे है विचार और निर्मानता आदि दैवी गुण बढ़े हैं याते शरीर का कष्ट भी सात्विकी पुरुषों को तप के समान है, काहेते जितने तप हैं सभी कल्याणकारी हैं, परंतु अनशनव्रत सबसे अधिक तप है, और जैसे रात से दिन आजाता है और दिन से रात आजाती है जैसे ये चक्र बिना यत्न से चलता रहता है तैसे दुख से सुख आ जाता है। सुख से दुख आ जाता है। यह चक्र भी दिन रात की तरह बिना यत्न से चलता ही रहता है परन्तु विचार करके देखिये तो विषय सुख से दुख श्रेष्ठ है, जीव का परम मित्र है जिसके आने से नम्रता, वैराग्य, नाम जपना, दान करना आदि शुभ गुण स्वाभाविक ही आ जाते हैं और विषय सुख शत्रु है जिसके आने से काम,

क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि आसुरी गुण हृदय में प्रवेश कर जाते हैं और यहां अत्यन्त कष्ट देते हैं परलोक में नर्क में गेर देते हैं, याते इन्द्रियों के विषयों की इच्छा करनेवाले जीव सदा दीन रहते हैं, शान्त नहीं होते। याते भोग इच्छा बन्धन का कारण है, और विषय भोगों की इच्छा का त्याग करना ही जीव का मुख्य कर्तव्य है क्यों कि विषय भोग तो सब योनियों में भोगता ही आया है मनुष्य जन्म को पाकर तो विषयों का त्याग करके भजन ही करना चाहिये।

दुख जीव का परम मित्र है जिसके आते साथ ही काम, क्रोध, अहंकार आदि सब शत्रु भाग जाते हैं याते जीव का दुखरूपी मित्र बड़ा बलवान है जो नर्क में गेरनेवाली खोटी विषय वासनाओं को भगा देता है और सुखरूप शुभ वासना को प्राप्त करता है और इंद्रियों के विषय सुख तो बड़े यत्न से प्राप्त होवें हैं और जीव का दुखरूपी मित्र ऐसा परोपकारी है कि बिना यत्न से बिना इच्छा के अपने आप आजावे है और दोनों लोक के सुख देनेवाले शुभ गुण साथ ही लावे है याते दुख बड़ा परोपकारी जीव का परम मित्र है जो नर्क से बचालेता है और वैराग्य द्वारा परमानंद की प्राप्ति करा देता है।

दोहा

सुख के मांथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी जाइये दुखसे, जो पल २ नाम जपाय ॥१॥
सुख में सौ सौ दुःख हैं, दुख में सौ आनन्द।
दुख से जब ये हित करें, छूटें सगले बन्ध ॥२॥
दुख की निन्दा मत करो, दुखिया स्वर्ग में जाय।
दुख ना होते जगत में, जाते नर्क सबाय ॥३॥

दुख में सुमरण सब करें, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमरण करें, तो दुख काहे को होय ॥४॥
दुख क्लेश और आपदा, परमानन्द निधान ।
भक्ति अरु निर्माणता, इन के अन्तर जान ॥५॥

(अर्थ स्पष्ट है)

किसी समय में भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी ने कुंती को कहा वर मांग, तब कुंती बोलती भई, हे भगवन ! दुखों की वर्षा होती रहे काहेते आपका नाम नहीं भूलेगा सदा यादगीरी बनी रहेगी । तब भगवान ने ऐसा ही वर दिया । और सुभद्रा को श्री भगवान कहते भये, वर मांग तब सुभद्रा बोली कि, हे भगवान ! एक समय भोजन खाने को मिले सो भी पूर्ती का ना मिले, भूख ही रहे काहेते आपका नाम सदा स्मरण रहेगा, काहे ते भूख से काम क्रोध आदि विकार मनमें प्रवेश नहीं करते और भूख से प्राण सूक्ष्म होने से मनस तो प्रधान होवे है । अर्थात् अनशन व्रत से निद्रा, आलस, जडता दोष भी निवृत्त हो जाते है और कामदोष का हृदय से अभाव ही हो जाता है और भूख से मन अंतरमुख होने से विचार में ही लगा रहता है ।

हे भगवान इसलिये मैं भूख ही चाहती हूँ, तब भगवान ने ऐसा ही वर दिया । विचार करना चाहिये सात्विकी पुरुषों को दुख और गरीबी ही सुख समान प्यारी है जिससे परमात्मा की भक्ति होवे है जिस भक्ति से परमानंद की प्राप्ति होवे है । राज के मद से, और धन के मद से तथा मन के मद से भक्ति होवे नहीं, उलटा आसुरी गुण काम, क्रोध आदि बढ़ने से पाप ही होवे है गरीबी से ही कल्याण होवे है ।

बाहर अंदर संग्रह से रहित और नम्रता और भक्ति भजन में प्रेम होना ये सात्विकी गरीबी है अथवा ईश्वर की कृपा से हृदय में गरीबी का निवास होना ही सात्विकी गरीबी है । ऐसी गरीबी से सर्व विरोध मिट जाते हैं और परमानन्द की प्राप्ति होवे है, और तीन वस्तु प्राप्त होजावें तो सात्विकी पुरुष को ऐसा सुख होवे हैं जो ऋद्धि सिद्धि से भी ऐसा सुख होवे नहीं । (१) अज्ञात देश की प्राप्ति (२) गरीबी होनी (३) मनुष्यों से अपमान होना, इन तीनों से भगवान का बारम्बार सुमरण होवे है और गरीबी रूपी तप से काम, क्रोध, अहंकार आदि विकार ऐसे भाग जाते हैं जैसे गुलेल से कौवा भाग जाता है । तब रजो, तमो से रहित सतो प्रधान होने से भजन विचार में मन तत्पर लगा रहता है ।

शास्त्र में तो गरीबी की महिमा कही है और शील स्वभाव के प्रभाव से इन्द्र को इन्द्र पदवी मिली है । नम्रता के बिना रावण आदि अहंकारी राजाओं के राज्य नष्ट हो गये और नम्रता के प्रताप से विभीषण और प्रथु आदि राजाओं को राज्य प्राप्त हुये हैं । नम्रता से जप, तप, दान आदि सर्व साधन सफल होवें हैं नम्रता से ही जै जैकार होवे हैं याते नम्रता के ही बढ़ाने का साधन करना चाहिये, काहेंते कटुवाक्य बोलनेवाले के पुन्य कटुवाक्य सहन करनेवाले के पास चले जाते हैं याते हितकारक मधुर और सत्य वाक्य बोलना चाहिये । काहेंते मधुर वाक्य के तुल्य करामात भी नहीं हैं याते हे तपस्वी जी ! ईश्वर की आज्ञा से प्राप्त हुई गरीबी और दुख तिसको सात्विकी पुरुष परम सुखरूप जानकर प्रसन्न होते हैं और जैसे शरीर के रोग की निवृत्ति के लिये और आरोग्यता की प्राप्ति के लिये कड़वी दवाई का सब लोग सेवन करते हैं, तैसे सात्विकी पुरुष भी

पूर्व के पापों की निवृत्ति के लिये और भजन विचार की प्राप्ति के लिये ग़रीबी और शरीरिक कष्ट को अमृतरूप जानकर ग्रहण करते हैं। और भजन विचार में तिन को अति प्रेम है उनके हृदय में सदा सुख ही सुख रहता है, चिन्ता, शोक उनको कभी होता ही नहीं और परमानन्द को प्राप्त हो जाते हैं। बहन कहती भई, हे तपस्वीजी! भगवान् को भक्ति ही प्यारी है और भक्ति ग़रीबी से होवे है याते ग़रीब का ही दान और भजन फलीभूत होवे है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

ग़रीब का दान किस प्रकार फलीभूत होवे है इसमें कोई उदाहरण कहिये।

॥ बहन का वचन ॥

हे तपस्वी जी! उदाहरण सुनो:—किसी समय श्री गङ्गा जी का पर्व था तब एक शहर के सब लोग स्नान करने गये और शहर का राजा भी जाता भया। तब सब लोगों ने श्री गङ्गाजी के तट पर दान किया। राजा ने तो लाखों रुपये का दान किया और सेठ लोगों ने हजारों रुपये का दान किया, उसी शहर का एक ग़रीब घास बेचकर गुजरान करता था तिसके पास कुल चार आने थे और कुछ नहीं था उसने चार आने ही दान करदिये तब सब लोग वापिस शहर को जाते भये। तब भगवान की कृपा से सब के ऊपर बादल की छाया साथ जा रही थी, तब लोग कहने लगे राजा ने और सेठों ने बहुत दान किया है इस कारण ऊपर छाया होगई है और वह ग़रीब जिसने चार आने दान किये थे, वह थोड़ी दूर कूये से जाकर पानी पीने लगा, तब छाया तो उस के ऊपर हो गई, लोगों के ऊपर धूप रह गई, तब लोगों को यह निश्चय हुआ कि इस ग़रीब का दान

फलीभूत हुआ है और किसी के दान का पुण्य इतना फलीभूत नहीं हुआ।

जब वह ग़रीब पानी पीकर लोगों के पास आया तो छाया उसके ऊपर चली आई तब राजा आदि सब लोगों ने उस ग़रीब को नमस्कार करी कहते कि उस दान के पुण्य का उसके मुख पर प्रकाश चमक रहा था तब सब लोग कहने लगे हे भगत जी! तुमने क्या दान किया है जो भगवान् तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रसन्न हुआ है? तब गरीब ने कहा कि हमारे पास चार आने थे और कुछ नहीं था भगवान् की प्रेरणा से सोई दान कर दिये। हमारे में तो दान करने की कुछ भी शक्ति नहीं है, तब राजा ने कहा—हे भगत जी! तुम धन्य हो जो मजदूरी करके तुमने सर्वस्व दान किया है। इस कारण तुम्हारे ऊपर भगवान्जी ने प्रसन्न हो कर बादल की छाया करी है। तब बहन कहती भई। हे तपस्वी जी! इस प्रकार उस गरीब पर राजा और सब लोग प्रसन्न होते भये।

इसलिये गरीब का दान अति ही सफल होवे है। याते भजन भी सात्विकी गरीबों का ही फलीभूत होता है प्रत्यक्ष देखिये संतोषी महात्मा भिक्षा वृत्ति से शरीर का निर्वाह सुख से करते हुये भजन विचार से परमानन्द को प्राप्त होगये याते हे तपस्वीजी! भजन और दान सात्विकी पुरुषों का ही सफल होवे है और ये सर्व जगत स्वप्न समान हमारे को मिथ्या निश्चय होने से भाई की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ। तब तपस्वी धन २ करता हुआ लड़के की माता के पास जाता भया क्यों कि मन में विचारा कि माता को पुत्र बहुत प्यारा होता है। इसलिये माता को जरूर मोह होगा याते माता की परीक्षा करनी चाहिये।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—माता तुमको विपत अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना किया, तिस मृतक के काज ॥

अर्थ—हे माताजी तुम्हारे को बहुत विपता पड़ी है । तेरे बेटे को मृगों का राजा जो शेर है तिस ने जगल में मारडाला है हमने इसी कारण से आज भोजन भी नहीं पाया ।

॥ माता का उत्तर ॥

दोहा—एक वृक्ष डाली घने, पक्षी बैठे आय ।
पोह फाटी पीली भई, उड़ २ चौदिश जाय ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! जैसे एक वृक्ष पर पक्षी बैठ कर रात काट कर चले जाते हैं, तैसे ही यह घर एक वृक्ष है तिस में पक्षी-रूपी सम्बन्धी इकट्ठे होकर अपनी २ आयु कर्म भोगकर अपने अपने कर्म के अनुसार बिछुड़ जाते हैं, इस से मोह करना वृथा है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

माता जी ! ऐसे सुन्दर बेटे के मरने का कुछ भी शोक नहीं करा, शोक के न होने में कोई विचार कहो ।

॥ माता का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! अब विचार सुनो, जो बात अवश्य होनेवाली है और वह हो जाय, तो उसका शोक करना वृथा है—इस जगत में जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा ही । जो फूलता है वह झड़ेगा ही—इसमें आश्चर्य क्या है, यह सब ईश्वर की आज्ञा से पदार्थ भ्रमते रहते है—यह संसार विनाशी है—अब कहो कौन किस का शोक करे—सब जगत काल के मुख में है, हज़ारों लाखों वर्ष की उम्र

भोग कर मरते ही हैं—कौन किस को रोवे—अंत में सब की यही गति है । याते मिथ्या शोक का त्याग करना ही योग्य है ।

हे तपस्वीजी ! अब एक उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक निवृत्त हो जावे हैं ।

हे तपस्वीजी ! एक राजा था उसका सुन्दर लड़का युवा अवस्था में मृत्यु होता भया । तब राजा कचहरी बंद करके शोक मंदिर में जा बैठा, और लोग तारीखोंवाले वापिस जाने लगे । तब एक माई ने लोगों से कहा कि मैं अभी राजा से कचहरी लगवाती हूँ । तब वह माई राजा के पास शोक मंदिर में गई और कहने लगी, हे राजन् ! हमारी एक अर्ज़ सुनिये । मैं अपने भतीजे की शादी पर जाते वक्त पड़ौसिन से ज़ेबर (गहना) मांग कर अमानत लेगई थी, जब मैं शादी से घर में आई तो वह पड़ौसिन अपना सब ज़ेबर मेरे से लेगई ! अब मेरे को बहुत शोक हो रहा है, मेरे से क्यों ले गई ? ऐसी चिंता से मेरा मन दुखी रहता है । तब राजाने कहा—अपनी अमानत उसे लेनी थी, तेरे को शोक चिंता कभी नहीं करनी चाहिये । तेरे को ज़ेबर दे देने की खुशी करनी चाहिये । तब राजा को माई कहती भई, तुम्हारे को बेटा परमात्मा ने अमानत दिया था, अब उसने अपनी अमानत तेरे से वापिस ले ली है । हे राजा ! अब तू बेटे की मृत्यु का शोक करके कचहरी बंद क्यों करे बैठा है ।

तब राजा को विचार हुआ कि यह सच्ची बात है कि सर्व राज आदि समाज परमात्मा की अमानत है जब चाहे अपनी अमानत ले सकता है, हमारा तो दुनियां में कुछ भी नहीं है । ऐसे वृथा ही मैं राज और बेटे का अहंकार करता था । ऐसे विचार करता

हुआ राजा ममतारूप शोक से रहित होता भया क्योंकि ममता ही शोक का स्वरूप है । तब राजा ने गम से रहित होकर खुशी आनद से कचहरी लगाई और राजा ने सब कुछ भगवान् का समझ कर धर्म अर्पण अन्न का लङ्गर लगा दिया और श्रद्धा से निष्काम होके रोज़ ही भगवान का भजन करता भया । तब माता तपस्वी को कहती भई कि हमारे पास बेटा परमात्मा की अमानत था उसने लेलिया है ।

हे तपस्वी जी ! इस उदाहरण के विचार से हमारे को शोक नहीं हुआ । अथवा हे तपस्वीजी ! इस प्रकार का एक और प्रसंग सुनो जिसके सुनते ही मोह निवृत्त होवे है । एक पण्डित था, लोगों को रोज ही कथा सुनाया करता था तिसका एक ही बेटा था, विद्या पढ़ा हुआ, बुद्धिमान, युवा अवस्था था । प्रारब्ध—वश वह मृत्यु होता भया तब पंडित बेटे के वियोग से चिन्ता करता हुआ निशदिन दुखी रहता था और कथा करनी भी बन्द करदी । तब भगवान्‌की प्रेरणा से स्वर्ग से दो देवता उस पण्डित की चिन्तारूपी दुख की निवृत्ति के लिये, इस मृत्यु लोक में आवते भये । एक देवता ने किसान का स्वांग धार लिया, दूसरे देवता ने मुसाफिर का स्वांग धार लिया तो पण्डित के पास दोनों आवते भये । तब किसान पण्डितजी को कहने लगा कि—हे पण्डितजी ! हमने रास्ते में खेती बोई थी इस मुसाफिर ने चले आते हुये पांव से दबाकर खेती का नाश कर दिया है, हमारे को बहुत दुख हो रहा है । इस का आप न्याय कीजिये । तब पण्डितजी कहते भये, तुमने खेती रास्ते में यों बोई ? जो रास्ते में खेती होती है तिसका तो मुसाफिरों के पांवों से नाश होता ही है । तुमको दुख नहीं होना चाहिये, मुसाफिर को तो रास्ते में चलना ही था । तब किसान ने कहा—पण्डितजी ! तुम्हारा बेटा भी

तो मौत के रास्ते में ही था उसकी भी मृत्यु होनी ही थी, आपने कथा क्यों बन्द करदी ? तुमको भी बेटे की मृत्यु से दुखी नहीं होना चाहिये काहेते, यावत् देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जीव मौत के रास्ते में हैं, सबको मौत मारती चली आती है । बालक, युवा, वृद्ध जो जीव दीखते हैं सबको मौत नाश करेगी किसीको भी नहीं छोड़ेगी । याते पण्डितजी ! तुमको बेटे के वियोग की चिन्ता त्याग के ईश्वर शरण होकर निशदिन भगवान का भजन करना चाहिये जिस करके उस लड़के का भी कल्याण होवे और तुम भी सुखी हो जाओगे ।

हे पण्डितजी ! तुम्हारे को उपदेश करने के लिये हम दोनों देवता स्वर्ग लोक से आये हैं । तब पण्डितजी ने प्रसन्न हो कर दोनों देवताओं का पूजन किया, और दोनों देवता स्वर्गलोक को चले गये । तब माता तपस्वी को कहती भई, इस प्रकार देवताओं के उपदेश को पण्डित मन में विचार करता भया कि यह सच्ची बात हैं । बड़े २ राजे आदि सर्व प्राणधारी मौत के रास्ते में हैं कोई भी मौत से नहीं बचेगा, सब जीव अपने २ कर्म के अनुसार मृत्यु हो जावेंगे । और हमारी भी मृत्यु अवश्य होगी । इसलिये लड़के की मृत्यु का शोक करना वृथा है क्योंकि मौत के आगे किसीका भी जोर नहीं चल सकता याते दिन रात भजन ही करना चाहिये । जन्म, मरण, सुख, दुख, लाभ, अलाभ सर्व व्योवहार ईश्वर की आज्ञा से होते हैं याते ईश्वर का हुक्म मानकर प्रसन्न रहना चाहिये । इस प्रकार पण्डितजी मन में विचार करते हुये शांति को प्राप्त हुये और सबसे उदासीन होकर मोह का त्याग करके सर्व व्योहार को छोड़ कर ईश्वर परायण होते भये, और लोगों को भी वैराग्य विषय में कथा सुनावते भये कि हे प्यारे ! सब का मुसाफिरोंवाला मेल है एक दिन सबका परस्पर वियोग अवश्य होगा । याते हे मुसाफिरो ! भगवान का

भजन ही दिन रात करना चाहिये यह अमूल्य समय जा रहा है धन भी एक रोज़ नहीं रहेगा । स्त्री, पुत्र आदि सबका वियोग अवश्य होगा, अपने शरीर का भी मोह छोड़ कर भगवान् में ही प्रेम बढ़ाना चाहिये, कोई भी वस्तु साथ नहीं जावेगी । पुण्य, पाप ही जीव के साथ जावेंगे, जिससे परलोक में सुख, दुख भोगेगा । इस लिये भजन से ही दोनों लोक में जीव सुखी होवेगा और कोई सुख का उपाय नहीं है । याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार वैराग्य का लोगों को पण्डितजी उपदेश करते भये । जैसे पंडित अपने बेटे को मौत के रास्ते में समझकर शांति को प्राप्त हुआ तैसे हमारा बेटा भी मौत के रास्ते में था, उसकी भी मृत्यु होनी ही थी । हम और तुम ये सब जगत मौत के रास्ते में ही हैं याते सब को मौत नष्ट कर देवेगी किसी को भी नहीं छोड़ेगी काहेते यह मृत्युलोक है । जैसे मिट्टी का कोट मिट्टी का ही स्वरूप है तैसे सम्पूर्ण मृत्युलोक मृत्यु का ही स्वरूप है । काहेते क्षण क्षण में देखते देखते पदार्थों का नाश होता चला जारहा है तो भी नाशवान पदार्थों में जीव राग द्वेष से परस्पर पाप करते हुये जल रहे हैं, यह सब मोह का ही प्रताप है और कुएँ में गिरने से चोट ना लगे तो ना लगे परंतु राग से व्योहार में प्रवृत्त होने से क्लेश अवश्य होगा याते राग ही दुखों का कारण है । हे तपस्वीजी ! एक और उदाहरण सुनो :—एक सन्त नदी के किनारे पर भजन करता था तब एक भगत ने कहा स्वामीजी जिस स्थान में आप कहो आपके लिये कुटी बनवादी जावेगी, तब सन्त ने एक पत्थर नदी में फेंका कि यहां कुटी बनाओ । तब भगत ने कहा यहां तो बड़े वेग से जल का प्रवाह चल रहा है यहां कैसे कुटिया ठहरेगी ? तब सन्त ने कहा काल का प्रवाह तो इससे भी अधिक ज़ोर से चलरहा है और स्थान में कुटिया कैसे ठहरेगी अर्थात् जहां

कुटिया बनाओगे वहां ही काल से नाश होजावेगी, याते हम कुटिया नहीं बनवाते । तब माता कहती भई कि हे तपस्वी जी ! विचार करना चाहिये, सात्विकी पुरुषों को प्रत्यक्ष काल ही वैराग्य को प्राप्त कर रहा है याते सब जगत काल के मुख में होने से काल का ही स्वरूप है । इस विचार से हमको बेटे की मृत्यु सुनकर मोह शोक नहीं हुआ । अथवा हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो । असङ्गरूपी शस्त्र से मोहरूपी संसार वृक्ष मूल सहित काटा जावे है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे माताजी ! असङ्गता का क्या स्वरूप है जिससे मोहरूपी संसार वृक्ष काटा जावे है ।

॥ माता का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! असङ्गता दो प्रकार की है, एक साधनरूप, दूसरी फलरूप । सर्व व्यवहार को ईश्वर का हुक्म जानना, जन्म मरण, सुख, दुख, सब ईश्वर की आज्ञा में होते हैं, याते अहङ्कार से रहित होकर विषय और विषयी पुरुषों के संग का त्याग करके निष्काम अभ्यास करना ये तो साधनरूप असङ्गता है और आप सहित सर्व जगत को ब्रह्मस्वरूप निश्चय करना और नाम, रूप, प्रपञ्च का अत्यन्त अभाव निश्चय करना ऐसी समता अन्दर की फलरूप असङ्गता है अथवा बारम्बार ब्रह्मविचार करना ही अन्दर की असङ्गता है, दृष्टा होके सर्व दृश्य को प्रकाशे है याही ते आत्मा असङ्ग है अथवा कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान का रूप ही होवे है । याते अद्वैत आत्मा असङ्ग है । और विचार यह है :—

जैसे पानी के घड़े में सूर्य्य का आभास होवे है घड़े का पानी निकासने से वह आभास सूर्य्य में ही लय होवे है तैसे भजन

विचार से अनात्म चिन्तन बन्द हो जाने से आभास ब्रह्म साक्षी में अभेद होवे है याते अनात्म चिन्तन बन्द कहिये चित्त का निरोध ही समाधि है इस लिए वैराग्य और विचार से चित को सदा समाहित करना चाहिये । और विचार ये है जैसे सफेद कागज पर अनन्त काली पीली लकीरें होवे हैं यद्यपि कागज की सफेदी सर्व लकीरों का आधार होने से अपरछिन्न हैं परन्तु लकीरों के सम्बन्ध से कागज की सफेदी भी लकीरों की तरह नाना परिछिन्न रूप होके दीखे है । लकीरों की दृष्टि त्यागने से शेष अपरछिन्न कागज की सफेदी ही रहे है तैसे सर्व नाम रूप कल्पित का अधिष्ठान आत्मसत्ता है परन्तु नाम रूप अनंत लकीरों का सम्बन्ध होने से अपरछिन्न अखण्ड सत्ता भी नाना परिछिन्न की तरह होकर दिखाई देवे है नाम रूप दृष्टि त्यागने से शेष केवल अपरछिन्न अद्वैत अखण्ड सत्ता ही परिपूर्ण रहे है और कुछ नहीं ।

याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार का अद्वैत आत्मा असङ्ग है । याने आत्मा की असङ्गता का दृढ़ निश्चयरूपी शस्त्र से मोहरूपी संसार वृक्ष मूल सहित नाश होजावे है । अर्थात् आत्म समतारूपी असङ्गता के दृढ़ अपरोक्ष होने से अज्ञानसहित अहंकार और संचित आदि कर्म और जन्म मरण मोह आदि सर्व क्लेशों का स्वप्न से जागृतवत् अत्यंत अभाव हो जावे है । तब माता कहती भई, हे तपस्वीजी ! इस प्रकार हमारे को आत्मा की असङ्गता का दृढ़ निश्चय होने से कल्पित नामरूप संसार सग का अत्यंत अभाव हुआ है इस लिये हमारे को बेटे की मृत्यु सुनकर, मोह शोक नहीं हुआ । तब तपस्वी धन धन करता हुआ राजा के पास जाता भया और मनमें सोचा की राजा को जरूर मोह होगा, राजा की परीक्षा करनी चाहिये । तब तपस्वी राजा के पास जाकर राजा को कहने लगा—

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—राजा मुख से राम कहो, पल २ घड़ी घड़ी ।
सुत खायो भृगराज ने, कुटिया लोथ पड़ी ॥

अर्थ—तपस्वी राजा को कहता भया, हे राजा ! पल पल घड़ी घड़ी में राम का स्मरण कर क्योंकि तुम्हारे बेटे को शेर ने मार डाला है, हमारी कुटिया के पास मुर्दा पड़ा है ।

॥ राजा का वचन ॥

दोहा—तपिया तप क्यों छोड़िया, यहां पलक नहीं सोग ।
बासा जगत सराय का, सभी मुसाफ़िर लोग ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! आपने तप क्यों छोड़ दिया हमारे को तो किंचित भी शोक नहीं है, क्योंकि शरीर नाश होनेवाला है—आज या कल अथवा कोट वर्षों में भी नाश अवश्य होगा—ऐसे विनाशी शरीर के मृत्यु से जो शोक करता है—क्या वह मूढ़ नहीं है—जैसे जल के बुदबुदे देखते २ मिट जाते हैं—ऐसे ही दुनियां के पदार्थ मिटते जाते हैं—याते शरीर के मृत्यु का शोक करना वृथा हैं—क्योंकि यह जगत सराय की तरह है । सर्व जगत के लोग मुसाफिर हैं मुसाफिरों की सरायवाला मेला है । हे तपस्वीजी ! सुपने की तरह सम्बन्धियों का संयोग है इस पर तेरे को एक उदाहरण सुनाता हूँ जिसके सुनते ही मोह शोक नष्ट होजाते हैं ।

हे तपस्वीजी ! एक सराय में तीसरे पहर एक ब्रह्मचारी आगया पीछे और मुसाफिर धीरे २ आने लगे, सराय भर गई और सुबहको जाने लगे तब पहरदिन तक सब चलेगये, तब वह ब्रह्मचारी जो पहिले आया था वह अकेला ही रहगया तब सराय खाली देखकर शोक करने लगा । जैसे उसका शोक करना वृथा है, तैसे ही यह सराय

की तरह गृहस्थियों के घर हैं। सम्बन्धीरूपी मुसाफिर इकट्ठे होते हैं पहिले एक दो सम्बन्धीरूपी मुसाफिर इकट्ठे होते हैं, फिर पुत्र पौत्र मुसाफिरों से घर भर जाता है। फिर माता पिता मुसाफिर जाने लगते हैं, ऐसे सम्बन्धीरूपी मुसाफिरों का संयोग वियोग होता रहता है, याते मुसाफिरों की तरह बेटे का वियोग हुआ है, शोक करना वृथा है क्योंकि स्वप्न इन्द्रजाल की तरह यह सब संसार के व्यौहार हैं। अपना पूर्णस्वरूप ब्रह्म, अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, चेतन, स्वयम् प्रकाश है। नामरूप सब कल्पित हैं, इसी विचार से हे तपस्वीजी हमारे को शोक नहीं हुआ।

राजा कहता है, हे तपस्वीजी! मोह के त्याग के लिये और विचार सुनो।

दोहा—बड़ा जाल यह मोह है, फसे जीव अनजान।
जिसके पुन्न निष्काम हैं, निकसे संत सुजान॥

भाव यह है—कि मोह करके सर्व जीव कष्ट पा रहे हैं। स्त्री पुत्र के मोह करके दूसरे के धन की चोरी करता है और कैद भोगता है मोह करके दूसरों की हिंसा करता है। स्त्री पुत्र धन के मोह करने से जीव अनेक पाप करता है और परलोक में नर्क भोगता है और कनिष्ठ योनियों को प्राप्त होता है और जिन्होंने पिछले जन्म में भजन नहीं किया और मोह आदि आसुरी गुणों से पाप कर्म करते हुयेअब वही जीव पशु, पक्षी, कीट बनकर दीख रहे हैं। पाप के फल से सर्प कीट आदि निकृष्ट योनियां पाता है मोह से धन की तृष्णा के प्रताप से मृत्यु भी याद नहीं रही और भगवान को भी भूल गया। मोह के प्रताप से धर्म से विमुख हुआ जीव कोई शुभ कर्म नहीं कर सकता। राग ही जीवों की मृत्यु है राग से रहित होना ही जीवन है

और मोहरूपी तेल का कढ़ाह तपा हुआ है, जिस में संसारी जीव मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पड़े हुये दुख पारहे हैं अथवा स्त्री, पुत्र, धन के रागरूपी अग्नि में जल रहे हैं। इसलिये मोह से जीव छूट नहीं सकते कोई सन्त महात्मा ज्ञान से मोह का नाश करके मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं। मोह महा अन्धकाररूप है। विचार के नाश करनेहारा है। जिनके विवेक नहीं है सो पुरुष मोहे गये उनको परमार्थ भूल गया है जन्म भी दुखरूप है और वृद्ध अवस्था भी दुखरूप है पुनः पुनः मृत्यु भी दुखरूप है संसार सब दुखरूप है परन्तु आश्चर्य है मोह के वश होकर अज्ञानी जीव फिर भी संसार से प्रीति करते हैं। बारम्बार जन्म का दुख भोगते हैं और निकस नहीं सकते परन्तु कोई उत्तम पुरुष वैराग्य का अभ्यास करते हुये संसार की तृष्णा से रहित होकर बारम्बार सन्तोष को बढ़ाते हुये मोक्ष पद को प्राप्त हो जाते है।

दोहा—सार वस्तु इक धर्म है, धारे पुरुष सुजान।
सुख पावे इस लोक में, होय दूर अज्ञान॥

जैसे हरिश्चन्द्रराजा ने पापरूप मोह का त्याग किया है केवल धर्मपरायण होकर राज को धर्म में देदिया। और काशी में जाकर आप स्वयं धर्मार्थ बिकगया। स्त्री पुत्र को भी बेच दिया अपने शरीर की और अपने स्त्री, पुत्र और राज्य आदि सबकी प्रीति छोड़ दी परन्तु धर्म से प्रीति नहीं छोड़ी। केवल धर्म में प्रेम होने से हरिश्चन्द्र का कुल कुटुम्ब परिवारसहित स्वर्ग में सुख भोग रहा है इसलिये संसार से प्रीति छोड़ कर धर्म में प्रीति करनेवाले दोनों लोकों में सुख भोगते हैं और ज्ञान से मोक्ष पाते हैं।

जो पुरुष अपनी शक्ति से रोज ही अन्न का दान करते रहते हैं, और भगवान के नाम का जाप जपते रहते हैं वह सदा सुखी

रहते हैं क्योंकि अन्न का दान यज्ञ और जप यज्ञ जो भक्त रोज ही करते रहते हैं । उनके पाप नाश होने से दुख नाश हो जाते हैं, दुख नाश होने से सदा सुख की प्राप्ति बनी रहती है ।

दोहा—दुख देवे जो और को, भोगे दुःख जरूर ।
औरन को सुख देत जो, सुख भोगे भरपूर ॥

भाव यह है कि जो दूसरों को सुख देता है उसको स्वयं सुख मिलता है । जो दूसरे जीवों को दुख देता हैं वह स्वयम् दुख भोगता है इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार दूसरों को सुख ही सुख देना चाहिये ।

दो०—बुरे वचन को त्याग के, धारे मधुर स्वभाव ।
रामनाम मन्त्र जपे, सहज मुक्ति हो जाय ॥

मन वाणी शरीर से किसी की हिंसा न करनी चाहिये । ये परम धर्म है । जैसे कि अग्नि में पैर रखने से भय होता है उसी तरह पाप से डरते हुये जो पाप नहीं करते वह पुण्यात्मा पुरुष कहे जाते है, पापकर्म के हृदय में दो संस्कार होते है । एक दुख होना, और दूसरा पापकर्म करने की वासना उदय होनी । जो पुरुष दुख को कर्म का फल जानकर भोगते हैं और पाप वासना को सत्सङ्ग अभ्यास से निवृत्त करते हैं उन पुरुषों के पाप तो नाश होते जाते हैं और वह पुण्यकर्म का फल सुख भोगते हैं । और जो पुण्य करने की वासना पैदा होने से पुण्यकर्म सत्सङ्ग द्वारा शीघ्र करलेते हैं उनके पुण्य पर्वत के समान बढ़जाते हैं तब उत्तमलोक में सुख भोगते हैं अथवा मोक्षपद को प्राप्त होते हैं ।

जो संसारी पुरुष सत्सङ्ग नहीं करते हैं उनके कुसङ्ग के प्रताप से पुण्यवासना नाश होती जाती हैं पाप वासना से पाप कर्म बढ़जाते

हैं जन्म २ के पिछले पाप की प्रेरणा से उसी पाप में लगे रहते हैं, जब पाप पर्वत के समान बढ़ जाते हैं, तब सर्प कीट आदि निकृष्ट योनियों को प्राप्त होते हैं अथवा नर्क भोगते हैं । तीर्थ यात्रा से, दान करने से, नाम जपने से सर्व पाप नाश होजाते हैं परन्तु मित्र-द्रोही का पाप नाश नहीं होता और जो पुरुष दूसरों को अपना मित्र बनाकर फिर उसका बुरा करता है ऐसा मित्रद्रोही पुरुष एक हज़ार चौकड़ी युगों तक नर्क भोगेगा । इसलिये उत्तम पुरुष पापों से भय करते हुये सत्सङ्ग द्वारा ऐसे पापों से बचजाते हैं इसलिये सत्सङ्ग भजन धर्म करते हुये उत्तम पुरुष मोह जन्य पापों से छूटकर दोनों लोकों में सुखी होते हैं । अथवा जो पुरुष दूसरे के कटुवाक सहन करता है और आप कटुवाक् किसी को नहीं बोलता, और सत्य बचन मधुर बोलता है, और निष्काम राम का भजन करता है वह सहज ही मोक्ष हो जाता है अर्थात् वह सहज ही सर्व दुखों से छूट जाता है ।

दोहा—अनेक पिछले पुण्य से, पाया मनुष्य शरीर ।
याते पुण्य कमाय जो, सुख पावे सो धीर ॥

भाव यह है—सेवा करके माता पिता को प्रसन्न करना चाहिये । बड़ो का कभी अपमान नहीं करना चाहिये । क्योंकि माता पिता तीर्थ के समान हैं इसलिये माता पिता की सेवा का महान पुण्य है । और गुरु सब से अधिक हैं, और गुरु की सेवा पूजन करने से ज्ञान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होवे है । याते मन, वाणी, शरीर करके गुरु की सेवा करनी चाहिये और गुरु, शास्त्र की सदा आज्ञा में रहना चाहिये और विचार करके देखिये तो यह मनुष्य शरीर इन्द्रियां आदि से लेकर सब समाज इस जीव को पिछले बड़े पुण्य से मिला

है इसलिये मन आदि इन्द्रियों से पुण्य ही करना चाहिये जैसे बुद्धि पुण्य से मिली है, सदा ब्रह्म विचार ही करना चाहिये । अथवा धर्म का ही विचार करना चाहिये । बुद्धि से अधर्म का चिंतन कभी नहीं करना चाहिये, बोलने की शक्ति पुण्य से मिली है इसलिये सच बोलना, मधुर बचन बोलना, नाम जपना चाहिये । वाणी से झूठ, निन्दा, कटुवाक्य कभी नहीं बोलना चाहिये और देखने की शक्ति पुण्य से मिली है, नेत्रों से सन्तों के और मन्दिरों के दर्शन करने चाहिये और पर स्त्री को माता बहन के समान देखना चाहिये । कानों से शास्त्र का श्रवण करना और हरिकीर्तन का श्रवण करना चाहिये । किसी की निन्दा श्रवण नहीं करनी चाहिये । हाथों से दान करना, सेवा करके दूसरों को सुख देना चाहिये, हाथों से किसी को दुख न देना चाहिये । भगवानपरायण होकर पांव से तीर्थयात्रा करनी चाहिये और पांवों से चलकर खोटा कर्म नहीं करना चाहिये ।

धन भी पिछले पुण्य से मिला है धन को धर्म में लगाना चाहिये, धन को खोटी तरफ अधर्म में नहीं लगाना चाहिये क्यों कि जो सुख जीव को मिलता है पिछले पुण्य से मिलता है । जो जो दुख होता है पाप से होता है । इसलिये हे तपस्वीजी ! जो उत्तम पुरुष है वह शरीर इन्द्रियों से पापकर्म से बचकर पुण्य कर्म ही दिन रात संग्रह करते रहते हैं वह उत्तम पुरुष ज्ञान को पाकर मोह जाल से छूटकर परमपद को प्राप्त होते हैं । राजा कहता भया—हे तपस्वीजी ! ये संसार मिथ्या है !

दोहा— मिथ्या सब संसार है, तीन ताप से ग्रास ।
निश्चय त्यागन योग है, जिज्ञासु रहे उदास ॥

भाव यह है :—कि यह कल्पित जगत तीनों तापों से ग्रसा

हुआ है सर्व प्रकार से त्यागने योग्य है, इसलिये उत्तम पुरुष संसार से उदासीन रहते हैं ।

दोहा—जब विचार कर देखिये, दुःख मूल अध्यास ।
नाशे ब्रह्मज्ञान से, पाये मोक्ष पद ख़ास ॥

भाव यह है—कि वास्तव में विचार कर देखिये तो शरीर का सम्बन्ध ही दुखों का कारण है । क्योंकि जैसे स्वप्न के शरीर के साथ जब सम्बन्ध होता है तब स्वप्न के सम्बन्धियों के साथ मोह खड़ा हो जाता है तब यह जीव शरीर आदि स्वप्न के सम्बन्धियों से मोह करके सम्बन्धियों के दुखों से दुखी होता है और क्षणमात्र में स्वप्न के संचित आदि कर्म खड़े हो जाते हैं और अनेक पाप पुण्य कर्मों का फल सुख दुख पाता है और अकस्मात से जागृत का बोध होता है तब स्वप्न शरीर के अभिमान निवृत्त होने से स्वप्न के शरीर आदि सम्बन्धियों के कल्पित दुखों से छूटजाता है तैसे ही अद्वैत स्वरूप सत्ता से सोया हुआ ये जीव देह में अभिमान करता हुआ देह के सम्बन्धी देखता है और देह सहित सम्बन्धियों का दुख ग्रहण करता है और स्वप्न की तरह क्षणमात्र में संचित क्रियमान आदि कर्म भी साथ भान होते हैं और मोह से पाप कर्म करता हुआ अनेक योनियों में दुखों को अनुभव करता है जब ब्रह्मरूपी जागृत का बोध होवे है तब अज्ञान की निवृत्ति से स्वप्न से जाग्रत की नाईं सर्व दुखों से छूट कर परमपद को प्राप्त होवे है । राजा कहता भया इसलिये अज्ञान कृत देह अध्यास ही दुखों का कारण है जैसे अग्नि के सम्बन्ध से शीतल जल भी तपायमान होजाता है । तैसे शरीर के सम्बन्ध से देह के तापों कर जीव तपायमान होता है और जैसे अचल लोहा भी चुम्बक पत्थर के सम्बन्ध से चञ्चल होजाता है, तैसे

अचल आत्मा में भी देह के सम्बन्ध से अज्ञान से दुखों का भान होने लगता है ।

देह जड़ है, आत्मा चेतन है, देह परछिन्न दुखरूप है आत्मा व्यापक सुखरूप है, देह विकारी है, आत्मा विकारों से रहित है, तो भी देह के सम्बन्ध से जीव अपने स्वरूप में दुखों का आरोप करके दुखी होवे है, वास्तव में देह और आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, परन्तु स्वप्न के दुखों की तरह अज्ञान कृत देह का अभिमान ही दुखों का कारण हैं, देह अध्यास की निवृत्ति अज्ञान की निवृत्ति से होवे है । अज्ञान की निवृत्ति स्वरूप के ज्ञान से होवे है स्वरूप का ज्ञान ब्रह्म विचार से होवे है ब्रह्म विचार ज्ञानवान की और सत शास्त्र की सङ्गत से होवे है । इस प्रकार ज्ञान से देह अध्यास की निवृत्ति से जीव मोक्ष होजाता है ।

दोहा—जागे जैसे स्वप्न से, त्यों स्वरूप का ज्ञान ।
सर्व दुखों से छूट के, पावे पद निर्वान ॥

भाव यह है—जब अद्वैत स्वरूप का बोध होवे है तब उसी क्षण में स्वप्न से जागे की तरह सर्व देह आदि कल्पित बन्धनों से और तापों से छूट जावे है । ना मेरी देह है, ना मैं देह हूँ, मैं बोध स्वरूप दृष्टा पूर्ण चेतन हूँ, ऐसे विचार होने से ग्रंथी की निवृत्ति होवे है तब अन्तःकरण मोह, शोक, धर्मों के सहित निवृत्त होवे है ना अपनी देह है ना और की देह हैं, देह आदि जगत साक्षी दृष्टा में कल्पित होने से आत्मा का ही स्वरूप है इसलिये आत्मा ही अपनी महिमा में स्थित है और कुछ नहीं ऐसा विचार जिस क्षण में होवे है उसी क्षण में प्रछिन्न अहङ्कार की निवृत्ति से कल्पित संचित आदि कर्म भी निवृत्त होवें हैं और जन्म मरण आदि के भय

से रहित होकर निर्भय होवे है इसलिये अनेक युक्तियों से विचार ही सदा करना चाहिये । ब्रह्मविचार करने से शीघ्र पाप नाश होते हैं जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार नाश हो जाता है ।

विचार से ही अद्वैत स्वरूप अपरोक्ष होवे है और द्वैत का अत्यन्त अभाव होवे है फिर दुखरूप संसार खड़ा होवे नहीं इसलिये हे तपस्वीजी ! समता का बारम्बार अभ्यास करने से अधिष्ठान में जगत का मिथ्या निश्चय रूप बाध होने से ज्ञान के प्रताप से वासना से रहित होकर सर्व आशा को पीठ देकर निरासता से सन्मुख होना ही योग का और ज्ञान का फल है । ऐसी परम शान्ति को पाकर देह आदि सम्बन्धियों के तापरूप दुखों से हम तपायमान होते नहीं । क्योंकि पदार्थों में मिथ्या भावना करने से मोह होवे नहीं, मोह के न होने से इष्ट पदार्थों के और सम्बन्धियों के वियोग से तपायमान होवे नहीं इस प्रकार तपस्वी से राजा कहता है, हमारे को बेटे की मृत्यु सुनकर विचार से मोह शोक हुआ नहीं, जैसे स्वप्न से जागे पुरुष को स्वप्न के इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष होवे नहीं, तैसे हमारे को अद्वैत स्वरूप के बोधरूप जागृत से हर्ष शोक हुआ नहीं । इस प्रकार राजा का विचार सुन कर तपस्वी बड़ा प्रसन्न होता भया । तब तपस्वी धन धन करता हुआ लड़के के भाई के पास जाता भया । तपस्वी मन में विचारता हुआ कि भाई की मृत्यु सुनकर भाई को अवश्य मोह शोक होता है, इससे भाई की परीक्षा करनी चाहिये तब भाई के पास आकर कहने लगा ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुनो राजकुमार तुम, अचरज की एक बात ।
टूटो भुज तुम आज एक, हते सिंह बन भ्रात ॥

अर्थ—हे राजपुत्र ! अचरज की बात तेरे को सुनाता हूँ, तुम्हारी आज दिन एक भुजा टूट गई क्योंकि बन के बीच शेर ने तुम्हारे भाई को मार डाला है ।

॥ भाई का वचन ॥

दोहा—भाई भये अनन्त मम, कितने पीछे तात ।
शोक करूं मैं कौन का, स्वप्ने सम जग जात ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! पिछले जन्म में कितने ही भाई छोड़ कर आया हूँ काहेते सुपने के समान सब जगत नाश हो जाता है मिथ्या शरीरों का संयोग वियोग अवश्य होता है, हे तपस्वीजी ! इस पर उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह शोक नाश होवे है । एक आम का वृक्ष फलों से भरा हुआ था, जो आंधी ज़ोर की चली तब आधे फल गिर पड़े और आधे खड़े रहे । तब उन गिरे हुये फलों में से एक फल वियोग से बोलता भया ।

दोहा—फल गिरंता यह कहे, सुन तरूवर बन राय ।
अबके बिछुड़े कब मिलें, करे न कोई सहाय ॥

अर्थ—फल वृक्ष को कहता भया, हे पिता तेरे से बिछुड़ा हुआ काल के मुख में अपने को देखता हूँ । पशु मनुष्य, पक्षी, जो कोई मेरे पास आवेगा मेरा नाश ही करेगा । मनुष्य तो चूस चूस कर ही खतम करेंगे, पक्षी टूंक टूंक कर मेरे को खतम करेंगे । और पशु तो एक बार ही मेरे को मुख में रख कर नाश करेंगे । इससे मैं काल के मुख में अपने को देख कर रुदन करता हूँ ।

दोहा—आगे तरूवर बोलता, यह सब जगत सराय ।
संयोग बिछोड़ा होत है, कर्म न मेंटा जाय ॥

अर्थ—वृक्ष कहता भया हे बेटा ! यह जगत मुसाफिरों की तरह सराय है, जहां २ संयोग होता है वहां वहां बिछोड़ा भी अवश्य होता है । बाप बेटे का, स्त्री पुरुष का, भाई भाई का, अवश्य एक दिन बिछोड़ा होता है । इसी प्रकार परमात्मा पिता से बिछुड़े हुये यह जीव सभी काल के मुख में हैं । जो भजन कर के परमात्मा के साथ मिल जाता है वह काल से बच जाता है । जो जीव परमात्मा से बिछुड़े हुये दीखते हैं सभी काल के मुख में हैं । वृक्ष फल को कहता भया—हे प्यारे पिछले जन्म भी हम तुम दोनों का मनुष्य के शरीर में बाप बेटे का संयोग था मगर वहां भी काल के वश से हम दोनों का वियोग होता भया । परन्तु मनुष्य जन्म दुर्लभ, मिला भी मगर व्यौवहार की तृष्णा के प्रताप से सारी आयु पापकर्म ही करते रहे और सोने, खाने में ही लगे रहे, झूठे कुटुम्ब के मोह से पाप बढ़ गये, पुण्य, धर्म कुछ भी न हुआ । इससे हम तुम दोनों वृक्ष योनि में प्राप्त हुये हैं । और पूर्व संस्कारों के बल से हमारा संयोग होके अब फिर वियोग हुआ है । अब हम तुम दोनों को याद रखना चाहिये जब फिर मनुष्य जन्म मिले तो सावधान हो कर भगवान का ही भजन करना चाहिये । जिस कर काल से बचकर परमानन्द की प्राप्ति होवे और सर्प, कीट, वृक्ष, पशु इत्यादि खोटी योनियों से अपने दोनों का कल्याण होवे ।

परमात्मा का भजन करना और सन्तों की सङ्गत से ही दुख योनियों से जीव छूटता है, और कोई उपाय छूटने का नहीं है सत्संग ही सुख का मूल है और जो मूर्ख जीव भजन, सत्संग और धर्म से विमुख हैं वह इस लोक में भी दुख पाते हैं और परलोक में नर्क भोगते हैं । पापकर्म करनेवाले को खोटी योनियां मिलती हैं, और

जो उत्तम पुरुष हैं वह तृष्णा से रहित सन्तोषवान हैं और धर्म-परायण रहते हैं। वह ज्ञान को पाकर मुक्त होजावेंगे, खोटी योनियों से उनका कल्याण होवेगा। ऐसे पुरुष जगत में धन्य हैं। ऐसा विचार आम का वृक्ष अपने बेटे फल को कहता भया तब फल सुनकर धीरज को पाकर शांति को प्राप्त हुआ।

भाई कहता भया हे तपस्वीजी! इतनी देर में वृक्ष के नीचे एक मुसाफिर आगया वह फलों के वियोग की हालत देख कर बहुत अफसोस करता हुआ कहने लगा कि जितने गिरे हुये फल हैं यह दूसरे भाईयों से बिछुड़ गये हैं अब इनका मेल नहीं होगा। गिरे हुये फलों को जीव खालेवेंगे। ऐसे मोह करता हुआ वह मुसाफिर शोक को प्राप्त हुआ।

हे तपस्वीजी! जैसे मुसाफिर का शोक करना वृथा है, तैसे मेरे को भाई का शोक करना वृथा है। मायारूपी वृक्ष के साथ अनन्त शरीररूपी फल लगे हुये हैं, कर्मरूपी वायु से कई शरीर गिर जाते हैं। कहीं कर्मरूपी वायु से पृथ्वी पर शरीर भ्रमते दीखते हैं। हे तपस्वीजी! विचार कर के देखिये तो अहंकार ही सब जीवों को जन्म मरणरूपी क्लेश को प्राप्त कर रहा है सो अहंकार की निवृत्ति भजन और विचार से होवे है सो विचार यह है इस जगत में जीव को जो २ दुख होवे हैं सो अपने पाप का फल है, और जो २ सुख होवे हैं सो अपने पुण्य का फल है। पाप पुण्य से भिन्न कोई भी पदार्थ जीव को सुख देनेवाला नहीं है। याते पुण्य पापकर्म के अनुसार ईश्वर ही फल देवे है। जो कुछ लाभ अलाभ, मान अपमान, सुख दुख सब व्यवहार ईश्वर की आज्ञा से होते हैं। कोई भी जीव अपने आप व्यवहार नहीं कर सकता। वाणी का

बोलना और चुप करना भी हुक्म बिना होवे नहीं, तो और व्यवहार जीव अपने आप कैसे कर सकता है?

दोहा—जीव काठ की पुतलियाँ, करमों रूपी तार।
ईश्वर खूब नचावता, प्रारब्ध के अनुसार॥

भाव यह है—जैसे काठ की पुतलियां तार से चेष्टा करती हैं, तैसे सब ईश्वर के हुक्म से चेष्टा करते हैं और जैसे मिट्टी के पिंड से घड़े बनते हैं तैसे पुन्न पाप कर्मों के पिंडरूपी मिट्टी से शरीर बनते हैं। याते जन्म मरण चौरासी के चक्कर में जीव भ्रमते फिरते हैं। इसलिये मनुष्य सब प्राणधारी देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सब प्राणी ईश्वर के हुक्म से भ्रमण करते हैं—हे तपस्वीजी! इस प्रकार भजन और विचार जब जीव करते हैं तब अहंकार की निवृत्ति से दोनों लोकों में सुखी होवें हैं। क्योंकि काम क्रोध आदि विकारों के अभाव होने से राग-द्वेष, जन्म—मरण आदि दुखों की निवृत्ति होवे है।

अर्थात् ज्ञान द्वारा मुक्तिपद को प्राप्त होते हैं, और जो देह अभिमानी जीव हैं वह पापों को ही कमाते रहते हैं, जैसे चूहा मिट्टी खोदकर ढेर लगा देता है तब साथ के साथ बिल बनती जाती है, तैसे जो जीव पापरूपी मिट्टी जमा करते हैं तब साथ के साथ दुखरूपी बिल भी बनती जाती हैं। और जो विषय भोगों की तृष्णा है वही पाप है और धन की अधिक तृष्णा करने से प्रारब्ध कम ज्यादा होवे नहीं धन के दान करने से धन बढे है जैसे नौका में पानी पड़ने से मल्लाह जल्दी दोनों हाथों से पानी निकालता है, कि नौका डूब न जाय, तैसे ही चतुर पुरुष जब धन बढ़ता देखते हैं, तब शीघ्र ही दोनों हाथों से धन को धर्म में लगाते हैं, कि धन नष्ट न हो जाय!

याते हरएक पुरुष को धन धर्म में लगाते रहना चाहिये । अथवा जैसे जिस कोठे में पतनाला न हो, वो कोठा गिर जाता है । तैसे ही धन के संग्रह में दान करना पतनाला है। जैसे कूप का पानी निकालने से निर्मल होवे है, और साथ ही साथ कूप में पानी भी बढ़े है ।

तैसे ही दान करने से धन बढ़े है याते धनी पुरुषों को धन का दान करना चाहिये । और जैसे लोहे का तवा तपा हुआ चूल्हे से उतार कर अलग रखने से ठण्डा होवे है, तैसे ही मन व्यौहार की अग्नि कर तपा हुआ एकान्त में बैठकर भजन करने से शान्त और सात्विक होवे है । अथवा जैसे ही गँदली नदी से जल का घड़ा भरकर अलग रखने से वह जल निर्मल होवे है तैसे ही मन भी व्यौहारों से अलग होकर एकान्त में भजन करने से शीघ्र ही रजो तमो से रहित होकर सतो गुणी और निर्मल होवे हैं । और सच बोलने से धर्म उत्पन्न होता है और दया करने से धर्म बढ़ता है और क्षमा से धर्म की रक्षा होती है, और क्रोध से धर्म का नाश हो जाता है। याते क्रोध नहीं करना चाहिये, सच दया क्षमा का ही सेवन करना चाहिये ।

जो किसी के ऊपर उपकार करता है, तिसको सौ यज्ञों का पुण्य मिलता है जैसे हज़ार गऊओं में बछड़ा अपनी माता के पास ही जाता है, तैसे जिसने पुण्य किया है, उसको ही उसका फल सुख प्राप्त होता है और को सुख नहीं मिलता । और विचार यह है कि जो कोई कुटिया बनवावे उसको दस हज़ार वर्ष स्वर्ग सुख मिलता है याते भाई कहता भया, हे तपस्वीजी ! इस प्रकार उपकार करने के अनेक तरह के पुण्य के फल शास्त्र में लिखे हैं सो सब ठीक हैं। इसलिये शरीर से, धन से, बुद्धि से, परोपकार ही करना चाहिये ।

काहे ते जीव को शरीर की धन की बुद्धि की शक्ति ईश्वर ने परोपकार करने के लिये दी है । याते सदा परोपकार ही करना चाहिये । और जैसे नदी अपने जल को आप भक्षण नहीं करती औरों को ही अपने जल से सुख देवे है । और जैसे वृक्ष अपने फल को आप भक्षण नहीं करते, औरों को ही अपने फल से तृप्ति करे हैं। तैसे ही उत्तम पुरुष अपने धन से औरों को सुख देवें हैं। याते हे तपस्वीजी ! किंचित परोपकार भी पुरुष से हो जावे तो वह पुरुष महान फल को प्राप्त होवे है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे राजपुत्र :—किंचित परोपकार हो जाने से महान फल होवे है । इसमें कोई उदाहरण कहो ।

॥ भाई का वचन ॥

हे तपस्वीजी :—एक पुरुष रास्ते में जा रहा था—उसको आगे रास्ते में कीचड़ की नाली आगई—तब उस पुरुष ने एक पत्थर नाली पर धर दीया । उस पत्थर पर पाँव रख कर नाली से पार होकर चला गया। तब और लोग भी उस रास्ते के जाने वाले उस पत्थर पर पाँव धर कर नाली से पार सुखपूर्वक जाने लगे । लोगों को उस नाली से गुजरने का बड़ा सुख हो गया । तब जिस पुरुष ने कीच की नाली पर पत्थर धरा था, वह मृत्यु होता भया । तब धर्मराज के पास उसको यमदूत ले गये । धर्मराज ने उसका हिसाब देखा तो उस पुरुष ने सारी उम्र में कोई पुण्य नहीं किया । मगर उस कीच की नाली में पत्थर धरने के उपकार का पुण्य इतना महान फैला हुआ था कि धर्म राजने यह हुक्म दिया कि इस पुरुष से जो किंचित मात्र परोपकार हुआ है उस पुण्य का

फल इस पुरुष को पांच हजार वर्ष स्वर्ग में ले जाओ । तब भाई कहता भया । हे तपस्वीजी ! इस प्रकार किंचित परोपकार करने के पुण्य का फल उस पुरुष को पांच हजार वर्ष का स्वर्ग सुख मिला। इसलिये हर एक पुरुष को परोपकार ही करना चाहिये ।

हे तपस्वीजी ! सेवा करके प्राणधारियों को सुख देना महान फल को प्राप्त होवे है । प्रारब्ध उपाधी के निवृत्त होने से धन आदि ऐश्वर्य नहीं रहे । याते अज्ञान बस संसारी जीव धन को सत जान कर अभिमान करके बंधायमान होते हैं । और पुण्य क्षीण होने से धन नाश हो जावे है याते धन आदि ऐश्वर्य सब मिथ्या है और ज्ञान–वान धन आदि ऐश्वर्य को स्वप्न की नाई मिथ्या जान कर अभिमान नहीं करते । याते ज्ञान–वान बन्धन से रहित मोक्ष हो जाते हैं । और जानते हैं कि जो कुछ कर्म की रेखा है, उसको तो ब्रह्मा भी नहीं मिटा सकता । यदि चन्द्रमा तप्त होजावे तो हो जावे, और अग्नि शीतल हो जावे तो हो जावे और सुमेरु पर्वत भी चलायमान हो जावे, परन्तु जीवों के कर्म की रेखा कभी भी चलायमान नहीं हो सकती । याते जीव के अधीन कुछ नहीं, कर्म का चक्कर चलता ही रहता है । इसलिये व्यवहारों को प्रारब्ध पर छोड़कर पुण्य ही इकट्ठे करने चाहिये ।

व्यासजी कथन करते है–कि राजा नल युधिष्ठिर रामचन्द्रजी कर्म के फल को भोगते भये तो और जीवों की क्या शक्ति है जो कर्मों को निवारण कर सके याते कर्म के भुगत जाने से शोक नहीं करना चाहिये ! शोक से पापों की वृद्धि होती है अर्थात् पाप बढ़ते हैं—और मृत्यु के समय जो रोते हैं, उनके नेत्रों से, मुख से जो जल की बूंदें गिरती हैं उन गिरी हुई बूंदों को जो मृत्यु

हुआ है उसका प्रेत बन कर ग्रहण करनी पड़ती हैं याते रोना नहीं चाहिये शोक त्याग करके उसकी क्रिया कर्म करना और उसके निमित्त दान पाठ भजन करना चाहिये जिसकर उसका कल्याण होवे ! और पिछले सम्बन्धियों को भी शान्ति मिले मन वाणी शरीर करके किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अहिंसा ही भारी तप है और अहिंसा ही परम तीर्थ है । और दूसरे का दुख दिया हुआ सहन करना, ऐसी परम शांतिरूप क्षमा को धारण करना चाहिये । ये क्षमा ही परम यज्ञ है और क्षमा ही परम तेज है । इस प्रकार जब काम क्रोध आदि के वेग को सहन करता है तब महान सुख की प्राप्ति होवे है । क्षमा से ही समाधि विचार की वृद्धि होवे है, क्षमा से क्रोध नाश होवे है । क्षमा से धर्म की रक्षा होवे है, क्षमा ही तपस्वियों का तप है, क्षमा से परब्रह्म की प्राप्ति होवे है । और शास्त्र में ऐसा लिखा है, जो किसी को सुख देवे है सो तिसके सुख को लेवे है और जो किसी को दुख देवे है सो तिसके दुख को लेवे है और जो पुरुष धर्म का नाश करता है उस पुण्य का वही धर्म उसकी रक्षा करता है । याते सम्बन्धियों का मोह छोड़कर धर्म ही करना चाहिये । क्योंकि धन, पुत्र आदि कोई भी परलोक में सहायता नहीं करेंगे । याते अपने कल्याण के वास्ते निष्काम भजन, धर्म आदि करने चाहिये ! अपने अमूल्य स्वांसरूपी रत्नों को वृथा विषयों में नहीं खोना चाहिये क्योंकि—

दोहा—जीव को घाटा रोज़ का, चोबीस हज़ार स्वास ।
सो बनजारा रोवता, पैदल कुछ ना पास ॥

भाव ये है—जिस जीवरूपी व्यौपारी के चौबीस हजार स्वांस नाम से खाली जाते हैं, अर्थात् नाम से भूलकर धन की तृष्णा से

रात दिन व्यवहारों में लगा रहता है ऐसे झूठे व्यौपार में लगे हुये व्यापारी को अन्त में पश्चात्ताप करके रोना पड़ेगा ।

दोहा—जो बनजारा रातदिन, जपे हरी का नाम ।
इतनी पैदा रोज़ की, नासे दुःख तमाम ॥

भाव यह है—जो जीवरूपी व्यौपारी दिन रात नाम जपता है तिस व्यापारी को इतना नफ़ा रोज़ होने से वह सब दुखों से रहित होकर दोनों लोक में महान सुखी होवे है ।

भाई कहता भया—हे तपस्वीजी ! एक और उदाहरण सुनो । एक वृद्ध माई का एक ही जवान बेटा था, और वह मृत्यु हो गया, तब उसके वियोग से माई बड़ी दुखी रहे । एक समय बाहर कुटिया पर एक महात्मा आगये । तब उस माई ने शोक की निवृत्ति वास्ते महात्मा के पास जाकर प्रार्थना की । हे तपस्वीजी ! हे स्वामीजी ! मेरा एक ही जवान पुत्र था, वह मृत्यु हो गया है अब उस के वियोग से मैं दिन रात दुखी रहती हूँ कृपा करके मेरा शोक दूर कीजिये । तब महात्मा ने मन में युक्ति विचार कर उस माई को कहा कि जिस घर का कोई भी मृत्यु न हुआ हो उस घर से एक पाव भर जल लेआ । हम तुम्हारे लिये जल मन्त्र देंगे, तुम वह जल पीलेना, तब तुम्हारा शोक दूर हो जावेगा ।

तब माई कटोरा लेकर सभी घरों में फिरी, परन्तु ऐसा घर कोई न मिला जिस घर का कोई भी सम्बन्धी भाई, पुत्र आदि न मरा हो । अर्थात् किसी के दो सम्बन्धी, किसी के चार, किसी के दस भाई पुत्र आदि मृत्यु हुये हैं । तब माई सब घरों से कटोरा खाली लेकर वापिस आकर महात्मा से कहने लगी । महाराज ! ऐसा घर कोई नहीं जिस घर में कोई भी मृत्यु न हुआ हो । तब महात्मा

ने कहा तेरे को रात दिन भगवान का भजन करना चाहिये, जिस कर तेरे बेटे का भी कल्याण होवे और तुम्हारे को भी शान्ति की प्राप्ति होवे । जब सब घरों में ऐसी ही मृत्यु से जीवों के पिता, पुत्र, पति, स्त्री आदि सम्बन्धियों का वियोग होता ही रहता है । तो तेरे बेटे की भी मृत्यु होनी ही थी, तू भी पुत्र के वियोग में शोक मत कर, तब माई इस विचार से सब घरों में जीवों के भाई पिता पुत्र आदि की मृत्यु को जानती हुई शोक से रहित होकर अपने कल्याण की वास्ते भगवान् का भजन करने लगी ।

भजन के प्रताप से दुख चिन्ता से रहित होकर माई शान्ति को प्राप्त होती भई । हे तपस्वीजी ! ऐसे विचार से हमारे को मोह शोक नहीं हुआ । तब तपस्वी धन धन करता हुआ उसके मित्र के पास जाता भया और मन में विचार करता हुआ कि मित्र को मित्र की मृत्यु सुनकर ज़रूर मोह होगा, इससे मित्र की परीक्षा ज़रूर करनी चाहिये । तपस्वी मित्र के पास जाकर मित्र को कहता भया :—

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—मित्र तुम्हारा हत भया, सुत सिंहनी के हाथ ।
भया अनर्थ यह आज ही, कांपत है मम गात ॥

अर्थ—तपस्वी मित्र को कहता भया, जंगल में शेरनी के बेटे शेर ने तुम्हारे मित्र को मार डाला है, यह आज ही अनर्थ हुआ है । ऐसा आश्चर्य देखकर मेरा शरीर तो काँपता है ।

॥ मित्र का उत्तर ॥

दोहा—मित्र मुआ तो भला हुआ, गया स्वर्ग में खास ।
हम तुम सब ही जांयगे, सब जग काल ग्रास ॥

अर्थ— यह सब जगत काल का ग्रास है, जो दीखते हैं सब काल के मुख में हैं, कोई काल से नहीं बचेगा, हमारा मित्र तो भक्त था मुक्त हुआ है अथवा वह खासकर के स्वर्ग में गया है। जैसे पुराना वस्त्र त्याग कर नया वस्त्र मिलजाने से खुशी होवे है। बहुत अच्छा हुआ हम भी उसको जा मिलेंगे हे तपस्वीजी! तुम शोक मत करो।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तपस्वी कहता भया—ऐसे प्यारे मित्र की मृत्यु सुन कर तुमने शोक नहीं किया, तुम्हारा प्रेम झूटा है। मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! आप एक उदाहरण सुनो जिसके सुनते ही मोह, शोक नष्ट होजावे हैं। जैसे रहट में बाल्टी होती हैं वह चक्कर लगाती रहती हैं, कभी नीचे कभी ऊपर। नीचे से जल भरकर आती हैं, ऊपर आकर खाली होजाती हैं और जिस बाल्टी की रस्सी टूट जाती है वह अगाध जल में लीन हो जाती है, और चक्कर से छूट जाती है तैसे ही यह जीवरूपी बाल्टी भी कर्मरूपी रस्सी से बंधा हुआ जन्म—मरणरूपी चौरासी के चक्कर में पड़ कर भ्रमता रहता है। जिस पुरुष को गुरु कृपा द्वारा ज्ञान होने से वासना नष्ट हो गई हैं वह कर्मरूपी रस्सी के टूटने से जीवरूपी बाल्टी अपने ब्रह्मरूपी अगाध जल में लीन होवे है अर्थात् जन्म, मरण चौरासी के चक्कर से छूट जावे है। और हे तपस्वीजी दूसरा उदाहरण सुनो।

एक सन्त शहर में भिक्षा लेने को गया, एक माई दाने पीस रही थी उसको देखकर सन्त रोनेलगा, और लोग इकट्ठे हो गये लोगों ने पूछा—'सन्तजी क्यों रोते हो?' तब सन्त कहता भया—'जैसे यह माई दाने पीस रही है, तैसे भगवान की कालरूपी चक्की बड़े ज़ोर से चलरही है तिसमें जीवरूपी दाने पीस २ कर नाश होते चले

जारहे हैं, कालरूपी चक्की मृत्यु को प्राप्त कर रही है सब जीवों को खतम कर लेवेगी किसी को भी नहीं छोड़ेगी इस कारण से मैं भयभीत होकर रोता हूँ,' तब इतने में सन्त का गुरु ऊपर से आ गया। उसने चेले की हालत देख कर कहा कि हे-'शिष्य! जैसे चक्की की कीली के आसपास जो दाने आ जाते हैं वह दाने बच जाते हैं, तैसे ही जो जीव भगवान की शरण में आ जाते हैं वह काल से बच जाते हैं, तैसे हे शिष्य! तू और भगवान् की शरण में आये हुये हैं अपना असल जो चेतनस्वरूप है तिसकी काल कुछ हानि नहीं कर सकता, तू रुदन मतकर।' तब उस सन्त का मन शांत हुआ और गुरु के साथ अपने आश्रम को चला गया।

मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! जड़ शरीर के विनाश से आत्मा की कुछ भी हानि नहीं होती, जिन पुरुषों ने आत्म भगवान की शरण ली है वह अमर हो जाते हैं। हमारी मित्र की सदा आत्म भगवान् में स्थिति है, याते चेतनस्वरूप की काल से कभी हानि नहीं हो सकती, याते हमारा मित्र जीता है। हे तपस्वीजी! तुम शोक मत करो अथवा हे तपस्वीजी! भगवान् भक्तवत्सल हैं जो जीव भगवान् की शरण में आ जाता है उसकी भगवान् काल संकट से रक्षा कर लेते हैं। किसी समय एक मृगी को बन में कष्ट पड़ा तिसकी पुकार सुनकर तत्काल ही मृत्यु से भगवान ने उसकी रक्षा करी।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र! किस प्रकार मृगी को कष्ट पड़ा और कैसे भगवान ने मृगी की रक्षा करी सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये।

मित्र का वचन ॥

दोहा—मृगी देखी एक बन में, गर्भ दिनन परमान ।
हर्षित व्याध होइ है, साध्यो सारङ्ग बान ॥

चौपाई

पश्चिम दिशा जाल को लायो, उत्तरदिशा सो अनल लगायो ।
पूरब दिशा श्वान दृढ़ कीनो, दक्षिण दिशा खेंचि शर लीनो ॥
चारों दिशा मृगी फिर आई, कोई दिशा विहीन न पाई ।
पश्चिम गई जाल में फँसे, उत्तर जाय अग्नि में जले ॥
पूरब गमने श्वान पछारे, दक्षिण गई अधिक मोहि मारे ।
प्रसूतकाल भी निकटे आन्यो, उदर मांहि सो बिथा जान्यो ॥
कृष्ण हरे मृगी ये भाखे, दीनबन्धु बिन कोई ना राखे ।
तृण वन चरूं करूं जल पाना, अपनो मांस प्रिय सब जाना ॥
अहो कृष्ण! सन्तन सुखकारी, दयासिन्धु मैं शरण तिहारी ।
अब तुम दया करो जगनायक, ये हि अवसर प्रभु होउ सहायक ॥

दोहा—घूमत है मन भँवर में, दुख की नदी अथाह ।
चहुँ ओर संकट पर्‌यो, प्रभु जी करो सहाय ॥

जब इस भांति मृगी अकुलानी, दीनबन्धु यह रचना ठानी ।
बन में मेघ घुमर कर आयौ, वर्षा नीर तब अनल बुझायो ॥
पवन ज़ोर से जाल उड़ायो, बाघ झपट श्वान को खायो ।
ओले बरष व्याध सिर परियो, चहुं ओर प्रभु रक्षा करियो ॥

दोहा—बरषे ओले व्याध सिर, झट निकसे तिस प्रान ।
अनाथ नाथ रक्षा करी, आई शरण भगवान् ॥

भाव ये है—तपस्वी को मित्र कहता भया, एक मृगी हमने बन में देखी थी जिसका शरीर दुबला था और गर्भवती थी तिसके

मारने को व्याध ने चारों दिशा रोकलीनी । पच्छिम दिशा में जाल को लगा दिया, उत्तर दिशा में अग्नि लगादी, पूर्वदिशा में कुत्ता खड़ा कर दिया, दक्षिण दिशा में व्याध बान खैंच कर आप खड़ा हो गया । मृगी बेचारी चारों दिशा फिर आई कोई स्थान निकलने को नहीं मिला जहाँ से निकल जावे तब मृगी विचार करती भई, कि प्रसूतकाल भी निकट आगया है । पेट में पीडा होरही है, इस प्रकार मृगी अति दुखी होकर अपने को काल के मुख में देखती हुई, केवल भगवान की शरण होकर पुकार करती भई ।

हे कृष्ण भगवान्! मेरी रक्षा कीजिये मैं अनाथ आपकी शरण हूँ मेरा दुर्बल शरीर है । बन में घास खाकर जलपान करती हूँ सब लोग अपने शरीर को प्रिय जानकर हमारे मांस खाने की इच्छा करते हैं । हे जगत के स्वामी! मेरे ऊपर दया करो हमारा संकट निवृत्त करो । इस प्रकार मृगी दुख की नदी में डूबती हुई पुकार करती भई । तब दीनबन्धु भगवान् पूर्ण अविनाशी, घट घट वासी, ने ऐसी रचना रची, उसी समय वर्षा होने लगी, जिससे अग्नि शांत हो गई और वायु जोर से चली, तब जाल उड़गया और व्याध के सिर पर ओले बरसने लगे, व्याध मृत्यु हो गया और एक बघेरा आया वह कुत्ते को मार कर चला गया । इस प्रकार चारों तरफ से मृगी की भगवान ने काल संकट से रक्षा करी । तब मृगी भगवान का धन्यवाद करती हुई प्रसन्न होकर बन में रहने लगी ।

तब मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी! जो प्राणधारी जीव भगवान की शरण में आ जाता है, अनाथों के नाथ भगवान उनकी काल संकट से रक्षा करते हैं । याते हे तपस्वीजी! आर्त्तभक्त के प्रेम से सर्व पाप क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं । जैसे गज की पुकार सुनकर

भगवान ने क्षणमात्र में सर्व पाप नाश कर दिये । और गज की ग्राह से रक्षा करी । याते हे तपस्वीजी ! जैसे अग्नि से ईधन का ढेर क्षणमात्र में जलजावे है, तैसे प्रेमरूपी अग्नि से सर्व पाप नाश हो जावे हैं । जैसे साबुन से मैल नाश होवे है, तैसे प्रेम से पाप नाश होवें हैं । जैसे जल के प्रवाह से पृथ्वी का कीच मैला साफ हो जावे हैं, तैसे प्रेम के प्रवाह से क्षणमात्र में सर्व पाप नाश होजावें हैं। और जैसे प्रकाश से अन्धकार का क्षणमात्र में नाश होजावे है, तैसे प्रेमरूपी प्रकाश से क्षणमात्र में पापरूपी अधकार निवृत्त हो जावे है । याते हे तपस्वीजी ! भगवान की शरण हो कर भगवान में प्रेम बढ़ाना चाहिये ।'

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र ! कोई और उदाहरण सुनाइये, किस प्रकार ईश्वर शरण होकर 'प्रेम' से सर्व पाप क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं।

॥ मित्र का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! एक बड़ा भारी तपस्वी था । कैसा तप कर रहा था कि जिसके पांव ऊपर और सिर नीचे था । और वृक्ष के साथ बंधा हुआ था । एक रोज गोपियां भगवान कृष्णचन्द्रजी के दर्शन के लिये जा रही थीं। तपस्वी ने कहा कि–' हे देवियो।' हमारी भगवान के आगे विनती कर देना कि हमारी मुक्ति कब होवेगी ?' तब गोपियों ने भगवान का दर्शन कर पुनः तपस्वी की तरफ से भगवान के आगे बिनती करी, तब भगवान बोले कि–' बीस लाख वर्ष ऐसा ही तप करता रहेगा तब मुक्ति पद उस तपस्वी को मिलेगा तब वह गोपियां विचार करने लगींकि तपस्वी को भगवान का हुक्म सुना दिया तो तपस्वी मृत्यु हो जावेगा। ऐसा विचार कर तपस्वी से

थोडी दूर होकर जा रही थी । तब तपस्वी ने उन्हें देखकर कहा कि–' हे देवियो ! हमारे वास्ते भगवान ने कैसे हुक्म दिया है तब गोपियां कहने लगीं। आपके वास्ते भगवान ने बड़ा सख्त हुक्म दिया है इस लिये आपको नहीं बताया । तब तपस्वी कहने लगा–' हे देवियो ! जो कुछ हमारे लिये हुक्म हुआ है सो बता दीजिये ।' तब गोपियां कहने लगीं कि–बीस लाख वर्ष ऐसा ही तप करता रहेगा तब मुक्ति होवेगी । ऐसा भगवान का हुक्म हुआ है।' तब तपस्वी सुन कर अति प्रसन्न होने लगा । और शरीर में खुशी का जोश आजाने से तपस्वी के शरीर के सर्व बन्धन टूट गये और पृथ्वी पर कूदने लगा और भगवान के गुणानुवाद गायन करता हुआ महान प्रसन्नता से कहने लगा 'बड़ा आनन्द हुआ कि मुक्तिपद मिलने का हुक्म तो हो गया। और हमारे को करोड़ों कल्प कनिष्ठ योनियां सर्प आदि में और बड़े २ भयानक मृत्यु के दुखों को भोगते २ बीत गये । यह तो कुछ भी बात नहीं है, मैं बड़ी खुशी से ऐसा ही तप बीस लाख वर्ष भगवान की आज्ञा से ज़रूर करूंगा ।' तब भगवान् तत्काल ही तपस्वी के पास आ गये । और तपस्वी भगवान् के चरणों पर दण्डवत् प्रणाम करके बड़ा प्रसन्न हो कर भगवान के गुणों की बारम्बार स्तुति करने लगा । तब भगवान तपस्वी पर प्रसन्न होकर तपस्वी को मुक्तिपद दे दिया, तब गोपियों ने भगवान की आश्चर्य महिमा को देखकर बिनती करी ।

'हे भगवान् ! आपने अभी तो कहा था कि बीस लाख वर्ष तपस्वी तप करेगा, तब मुक्तिपद तपस्वी को मिलेगा । और आपने इसी वक्त तत्काल ही मुक्तिपद देदिया । भगवन् आपकी महिमा बड़ी विचित्र है, तब भगवान बोले कि जो बीस लाख वर्ष में तप करने

से इस तपस्वी के पाप नाश होने थे, वह इसके 'अति प्रेम' श्रद्धा से क्षणमात्र में सर्व पाप नाश हो गये । याते इस तपस्वी का हृदय पाप से रहित अति निर्मल हो गया है । इसलिये मुक्तिपद के योग्य होने से इसको तत्काल ही मुक्तिपद दे दिया है । तब मित्र तपस्वी को कहता भया—'हे तपस्वीजी ! इस प्रकार 'प्रेमरूपी अग्नि से पाप ईंधन क्षणमात्र में सब जल जावे हैं । याते भगवान में 'प्रेम' बढ़ाना चाहिये । और हे तपस्वीजी ! इसी प्रकार एक माई कीड़ी थी जो भगवान श्री रामचन्द्रजी का आठों पहर भजन करती थी। तिसको एक समय महान कष्ट पड़ा । और भगवान ने उसका कष्ट निवारण किया ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे मित्र ! किस प्रकार माई कीड़ी को कष्ट पड़ा । और किस प्रकार भगवान ने उसका कष्ट निवारण किया । सब वृत्तांत सुनाइये ।

॥ मित्र का वचन ॥

दोहा—माई कीड़ी राम का, मन से ध्यान लुगाय ।
अनंत लाल तिसको दिये, प्रभुजी करी सहाय ॥

मित्र तपस्वी को कहता भया भाव यह है एक माई 'श्रीरामजी' का भजन करती थी तिस माई का नाम कीड़ी था, तिसका एक बेटा था, वह भी भगवान का भक्त था, और भजन करता था ! एक दिन ज्योतिषी ने माई कीड़ी के बेटे के हाथ की रेखा देखी, तब ज्योतिषी को मालुम हुआ कि इस लड़के का राजा की लड़की के साथ संयोग है । तब ज्योतिषी ने राजा को जाकर कहा कि कर्म की गति बड़ी विचित्र है, कि माई कड़ी अति गरीबनी हैं तिसके बेटे का आपकी लड़की के साथ संयोग हैं । तब राजा ज्योतिषी की बात सुनकर बड़ा शोकवान

हुआ और विचारने लगा कि गरीबनी माई के बेटे के साथ हमारी लड़की का संयोग हुआ तो हमारी बड़ी बदनामी होगी । याते कोई झूठ जुल्म लगाकर इन माँ बेटे को मर वादेना चाहिये ।

तब राजा ने माँ बेटे को बुलाकर यह हुक्म दिया कि सुबह एकलाल (हीरा) हमारे को ला दो । अगर सुबह लाल नहीं लावोगे तो तुम दोनों मां बेटे को फांसी दी जावेगी । तब ऐसा सख्त हुक्म सुनकर मां बेटे दोनों अपने घर आकर विचार करते भये । कि सुबह फांसी लगजाना हैं । एक रात की मौहलत मिली है । याते भगवान का ध्यान ही करना चाहिये । तब दोनों मां बेटे भगवान के आगे अनेक प्रकार से प्रार्थना करते हुये और सर्व दुनियां से उदासीन होकर अपने को मृत्यु के मुख में देखते हुये, भगवान के ध्यान में निर्विकल्प होगये, सारी रात दोनों की अचल समाधि लगी रही । तब ब्रह्ममुहूर्त के समय भगवान ने उनको अति आर्त हुये ध्यान में मग्न देखकर उनके घर में अनन्त लालों का ढेर लगा दिया ।

इधर सुबह होते के साथ ही राजा बज़ीर को कहता भया तुम जाओ उन मां बेटे को पकड़ लाओ, कि अबतक लाल नहीं लाये, उनको जल्दी फाँसी देदो । तब बजीर उनके घर आया तो क्या देखा कि मां बेटे की तो समाधि लगी हुई है और उनके घर में लालों का ढेर लगा हुआ है । एक एक लाख करड़ों रुपये का है । तब यह समाचार बजीर ने राजा को जाकर सुनाया तो राजा भी माई कीड़ी के घर जाता भया, और अनन्त लाखों को देखकर भगवान और भगवान के भक्तों की महिमा गायन करने लगा । तब राजा मन में विचार करता भया । कि माई कीड़ी आठों पहर भजन में लगी रहती है, इसलिये माई कीड़ी को भगवानजी ने इतने लाल दिये हैं ।

जिसके समान हमारा सारा राज समाज भी नहीं हो सकता । ऐसा विचार करके राजा अपने अन्याय की माई कीड़ी से मांफी मांगता भया और उसी वक्त माई कीड़ी के बेटे के साथ अपनी बेटी का विवाह करता भया ।

मित्र कहता भया—'हे तपस्वीजी ! इस प्रकार भगवान भक्तों के प्रेम बस हुआ क्षणमात्र में भक्तों के पाप और कष्ट निवारण कर देता है । जैसे प्रकाश से अंधकार दूर होजाता है, तैसे प्रेमरूपी प्रकाश से क्षणमात्र में पाप निवृत्त हो जाते हैं । और जैसे भूल से अग्नि का स्पर्श होजाय तो जलादेती है, तैसे ही मलीन चित्त वाला भी भगवान का स्मरण करे तो उसके पाप भी शीघ्र ही नाश होजावें हैं । याते ईश्वर शरण होकर नम्रभाव को धारण करके भगवान में प्रेम बढ़ाना चाहिये । काहेते राज दुर्लभ नहीं हैं, प्रेम ही दुर्लभ है । काहेते संसार के पदार्थों में तो प्रेम सबका है परन्तु भगवान में प्रेम तो किसी भाग्यशाली पुण्यात्मा का ही होवे है, इसलिये प्रेम दुर्लभ है । याते हे तपस्वीजी ! जैसे पानी के बिना मछली दुखी होवे है, तैसे नाम के बिना सच्चे प्रेमी बेचैन हो जाते हैं । याते जो सच्चे प्रेमी भक्त है, वह भगवान के भजन ध्यान में सदा मस्त रहते हैं । उनके हृदय में सदा सुख ही सुख रहता है और परमानन्द भगवान की उनको प्राप्ति हो जाती है । याते हे तपस्वीजी ! संसार से उदासीन होकर भगवान की शरण ही लेनी चाहिये ।

दोहा—बालक युवा और वृद्ध को, है सबको अधिकार ।
पचास वर्ष के बाद में, छोड़ सकल संसार ॥

भाव यह है—जो कोई भगवान की शरण में आ जाता है, भगवान उसकी रक्षा करते हैं । इसलिये बालक को, युवा को और

वृद्ध को, सब को ईश्वर शरण होना चाहिये । परन्तु पचास वर्ष के बाद में तो सर्व विहार को छोड़कर संसार से उदासीन होकर ईश्वर शरण ही होना चाहिये । काहेते ईश्वर शरण होने से जीव के पाप दुख सब नाश हो जाते हैं । हे तपस्वीजी ! और विचार यह है कि वास्तव में तो आनन्द स्वरूप जीव आत्मा में कभी दुख का सम्बन्ध हुआ ही नहीं ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

यदि दुख सम्बन्ध से रहित जीव आत्मा आनन्द स्वरूप होवे तो सर्वदा काल सुख ही होना चाहिये । सो सर्वदा काल सुख होवे नहीं ।

॥ मित्र का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! विचार दृष्टि से जीव सर्वदा काल सुख स्वरूप ही है । दुख का सम्बन्ध कभी हुआ ही नहीं । परन्तु जैसे ज्वर दोषवाले पुरुष को मीठा गुड़ भी कटु भान होवे है यद्यपि गुड़ स्वरूप से ही मीठा है, परन्तु ज्वर के दोष से कल्पित कटु भावना मधुरता को अच्छाद लिया ! यह गुड़ है ऐसा तो भान होवे है, परन्तु मीठा भान होवे नहीं उल्टा यह गुड़ कटु है ऐसा भान होवे है । और ज्वर का दोष निवृत्त होने के साथ ही वही गुड़ मीठे का मीठा ही भान होवे है ।

तैसे जीव स्वाभाविक ही सुख स्वरूप है परन्तु जिस हृदय में चिन्ता आदि विशेष दोष होवें हैं तिस हृदय में 'मैं दुखी हूं' ऐसा भान होवे है यद्यपि विक्षेप काल में भी सुख का अभाव नहीं हुआ, परन्तु कल्पित दुख की भावना से सुख (छिपा) आच्छादिया गया यद्यपि विक्षेप समय भी 'मैं हूँ' ऐसा स्वरूप का भान तो होवे है परन्तु सुख भान होवे नहीं, मैं दुखी हूं, ऐसा भान होवे है

जब वांछित विषय की प्राप्ति से अथवा अभ्यास से विक्षेप दोष निवृत्त होवे है तब चित्त समाहित काल में स्वरूप सुख का भान होवे है। मैं सुखी हूं ऐसी प्रतीति से कल्पित दुख की भावना निवृत्त होवे है तब स्वरूप का सुख निरावर्ण होवे है परन्तु अज्ञानी को भ्रम से, अपने से, भिन्न विषय से, सुख की प्राप्ति का अनुभव होवे है और ज्ञानवान को विचार से सर्वदा काल सुख स्वरूप का अनुभव होवे है अथवा हे तपस्वीजी ! और विचार सुनो ।

दोहा—घट में नभ ज्यों होइ है, ब्रह्म सुख मन मांहि ।
चिन्तारूपी दुख ने, सुख आच्छादिया तांहि ॥
नाम जपे भगवान का, चिन्ता होवे दूर ।
निवारण सुख होइ है, मन में जो भरपूर ॥

मित्र कहता भया, हे तपस्वीजी ! भाव यह है—जैसे घट में आकाश स्वाभाविक ही भरा हुआ है, तैसे मन में ब्रह्म सुख स्वाभाविक ही भरा हुआ है । परन्तु घट में अनाज भर देने से घट का आकाश आच्छादिया जावे है जब घट से अनाज निकास लिया जावे तब घट का आकाश निरावरण होवे है तैसे स्वरूप सुख निराकार ब्रह्म भी मनरूपी घट के अन्दर बाहर स्वाभाविक ही भरा हुआ है। परन्तु जिस काल में इच्छा का अथवा चिन्ता का मन में प्रवेश होवे है, तब स्वरूप सुख आच्छादिया जावे है, और अभाव की तरह भान होवे है । मैं सुखी नहीं हूँ, मैं दुखी हूँ, ऐसा प्रतीत होवे है । जब वांछित विषय की प्राप्ति से अथवा अभ्यास से चित्त समाहित काल में इच्छा अथवा चिन्ता के अभाव से स्वरूप का सुख निरावरण होवे है । 'मैं सुखी हूँ' ऐसी प्रतीत मनमें होवे है परन्तु अज्ञानी अपने स्वरूप से भिन्न भ्रांति से विषय से सुख की प्राप्ति माने है तिस को क्षणिक सुख का लाभ होवे है ।

काहेते दूसरी वस्तु की इच्छा मन में होने से स्वरूप का सुख ढक जावे है और चित्त निरोध आदि से अभ्यासी पुरुष भी अपने से भिन्न सुख की प्राप्ति माने है, तिस को भी परिछिन्न सुख का ही लाभ होवे है । परन्तु राजे आदिकों से अभ्यासी पुरुष को अधिक सुख का अनुभव होवे है । और ज्ञानवान विचार से सर्वदा काल परिपूर्ण स्वरूप सुख का ही अनुभव करे है । विचार यह है जैसे बालक को भूषण दीखे है सोना नहीं दीखे है और स्त्री को भूषण, सोना दोनों दीखे है। और सुनार को केवल सोना ही दीखे है यद्यपि भूषणों का कथन करता हुआ भी सुनार सोने को ही देखे है, भूषणों को नहीं देखे है । तैसे अज्ञानी तो जगत को ही देखे है और जिज्ञासु जगत और ब्रह्म दोनों को जाने है और ज्ञानवान विचार से निरतिशय आनन्दरूप अद्वैत ब्रह्म को ही अनुभव करे है यद्यपि ज्ञानवान जगतका कथन करता हुआ भी जगत को नहीं देखे है, ज्ञानवान सर्वदा काल अद्वैत स्वरूप सुख का ही अनुभव करे है ।

काहेते जो जो सुख से भिन्न होवे है सो सो दुखरूप ही होवे है, यदि सुख से भिन्न आत्मा होवेगा तो आत्मा भी दुख की नांई प्रतिकूल ही होवेगा और आत्मा किसी को भी प्रतिकूल है नहीं किन्तु सर्वदा काल सर्व जीवों को अपना आप आत्मा परम प्रेम का विषय होने से अनुकूल ही है इसलिये सुख से भिन्न आत्मा नहीं है, सुख आत्मा का स्वरूप ही है । याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार विचार दृष्टि से जीव सर्वदाकाल सुख स्वरूप ही है । तपस्वी कहता भया हे मित्र आपने जीवसुखरूप कहा सो ठीक है । परन्तु विक्षेप आदि दुख किसको होवे हैं ।

॥ मित्र का वचन ॥

हे तपस्वीजी ! विक्षेप आदि दुख अन्तःकरण के धर्म हैं, असंग आत्मा के नहीं और विचार यह है कि देवराज इन्द्र को भी ऐसा सुख नहीं होवे है, और चक्रवर्ती राजा को भी ऐसा सुख नहीं होवे है जैसा सुख राग से रहित मुनि, सन्त को एकान्त स्थान में निवास करने से होवे है अथवा जो पुरुष केवल भगवान परायण सर्व इच्छा से रहित होकर एकान्त स्थान में भजन तत्पर करता है उसको इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक सर्व सुख की प्राप्ति होवे है काहेते इच्छा के अभाव से स्वरूप सुख सदा निरावरण रहता है। हे तपस्वीजी ! विचार से विक्षेप समाधि भी अन्तःकरण के धर्म हैं, मेरे नहीं हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि मन के धर्म हैं। अनुभव करनेवाला सुख स्वरूप मैं आत्मा असङ्ग हूँ। विचार ये है जैसे स्वप्न के राज का सुख जाग्रत के किंचित सुख के समान भी होवे नहीं। काहेते स्वप्न के राज सुख की अपेक्षा से जाग्रत का किंचित सुख भी सच्चा है। तैसे इस लोक के सुख राज आदि ब्रह्मसुख की बूंद के समान भी नहीं हैं। काहेते स्वप्न समान इस लोक के सुख राज आदि मिथ्या हैं और जाग्रतरूप, ब्रह्म सत चित, आनन्द स्वरूप परिपूर्ण है।

याते हे तपस्वीजी ! जैसे स्वप्न से जागे पुरुष को स्वप्न के सम्बन्धियों के वियोग से मोह, शोक होवे नहीं, तैसे हमारे को अद्वैत स्वरूप के बोधरूप जाग्रत से स्वप्न के मित्र का वियोग होने से मोह शोक हुआ नहीं। तब इस प्रकार मित्र का विचार सुनकर तपस्वी धन धन करता हुआ उसी राजकुमार के पास कुटिया पर जाता भया और मन में सोच करता भया, लड़के की परीक्षा के वास्ते ऐसा भयानक शब्द सुनाऊ जिसके सुनते ही मोह के वश होकर

रुदन करता हुआ ज़मीन पर गिर पड़े। तब तपस्वीजी ऐसा भयानक शब्द सुनावते भये।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—सुन नृप नन्दन बात मम, महा शोक की खानि।
निकसे पीछे अग्नि से, भई कुटुम्ब की हानि ॥

अर्थ—हे लड़के जिस वक्त तुम घर से निकले हो पीछे तुम्हारे महलों में आग लगी, तुम्हारा सारा धन कुटुम्ब आदि जलगया है।

॥ कुमार का उत्तर ॥

दोहा—जितने लोग कुटुम्ब सब, इक दिन बिछुड़न होय।
याते हम पहिले तज्यो, संग न करहूँ कोय ॥

अर्थ—हे तपस्वीजी ! कुटुम्ब के जितने लोग हैं सब का नवका के मुसाफिरों वाला मेला है, एक एक करके संयोग होता हैं फिर क्रम से बिछोहा हो जाता है। ऐसे मुसाफिररूपी शरीरों के वियोग से शोक करना वृथा है। मैं तो पहिले ही घरको छोड़ कर चला आया हूँ अब मैं किसी का भी संग नहीं करूंगा और कुटुम्ब का तो कभी स्मरणमात्र भी नहीं करूंगा।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे लड़के तुमने कुछ भी शोक नहीं किया तुम्हारा कैसा पत्थर चित्त है।

॥ कुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! शरीर सब नाश हो जानेवाले हैं और जो चेतन आत्मा है तिसका नाश नहीं होता अविनाशी आत्मा प्रकाशक और व्यापक है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

आत्मा प्रकाशक तो है परन्तु व्यापक नहीं है ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! जहाँ जहाँ प्रकाश्य प्रकाशक भाव होवे है । वहां वहां व्यापक भाव अवश्य होता है जैसे तेज प्रकाशक है रूप प्रकाश्य हैं । तेज व्यापक है, रूप व्याप्य हैं, वास्तव में विचार करके देखिये तो प्रकाश्य प्रकाशक भाव से रहित और व्याप्य व्यापक भाव से रहित जितने रूप है तेज मात्र हैं तैसे ही आत्मा प्रकाशक है दृश्य प्रकाश्य है । आत्मा व्यापक है, दृश्य व्याप्य है । वास्तव में विचार करके देखिये तो प्रकाश्य प्रकाशक भाव से रहित व्याप्य व्यापक भाव से रहित जितना जगत दृश्य है एक आत्मा का रूप है विचार से जब ऐसे असङ्ग होता है तब शीघ्र ही शांति को प्राप्त होवे है और आत्मा सतचित आनन्द परिपूर्ण है जिसमें जगत कल्पित होने से आत्मा का ही रूप है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

अपने से भिन्न जगत सत क्यों भान होता है ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! अज्ञान से जगत सत भान होता है विचार करके देखिये तो आत्मा से भिन्न जगत सत होता तो आत्मा कभी न प्रकाशता क्योंकि आत्मा भी घट की नाईं परिछिन्न और जड़ हो जाता, आत्मा सर्व का ज्ञाता होने से चेतन और व्यापक है । याते हे तपस्वीजी ! प्रकाशक आत्मा में नाम रूप जगत कल्पित होने से आत्मा का ही रूप है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

आत्मा जगत की एकता में तुमने युक्ति कही सो ठीक है, परन्तु कोई दृष्टान्त भी कहना चाहिये ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! आत्मा जगत की एकता में अब दृष्टांत सुनो— जैसे भूषण सोने में कल्पित होने से स्वर्ण का ही रूप है, तरङ्ग जल में कल्पित होने से जल का ही रूप है, अक्षर स्याही में कल्पित होने से स्याही का ही रूप है, शस्त्र लोहे में कल्पित होने से लोहे का ही रूप है, घड़े मृतिका में कल्पित होने से मृतिका का ही रूप है, वस्त्र सूत में कल्पित होने से सूत का ही रूप है । सर्प रस्सी में कल्पित होने से रस्सी का ही रूप है, दीवार में चित्र कल्पित होने से दीवार का ही रूप है, ठूंठ में चोर कल्पित होने से ठूंठ का ही रूप है । सीपी में चांदी कल्पित होने से सीपी का ही रूप है । काष्ठ में कड़ी, किवाड़, तख्ता कल्पित होने से काष्ठ का ही रूप है । गिलास बोतल, चिमनी, कांच में कल्पित होने से कांच का ही रूप है । कनस्तर, डिब्बे, टीन में कल्पित होने से टीन का ही रूप है । तैसे नाम रूप सर्व जगत परमात्मा में कल्पित होने से परमात्मा का ही रूप है । इसलिये परमात्मा ही अपनी महिमा में स्थित है और कुछ नहीं ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

तुम्हारा यह विचार तो ठीक है परन्तु हे लड़के तुम्हारा सब कुटुम्ब नष्ट होगया अब तुम जाकर राज्य करो अर्थात् राज लक्ष्मी का सुख भोगो ।

॥ राजकुमार का वचन ॥

राजकुमार कहता भया—हे तपस्वीजी लोहे की बेड़ी तो छेनी

से काटी जावे है । परन्तु मोहरूपी बेड़ी ऐसी दृढ़ और कैड़ी है असंख्य जन्मों में भी किसी उपाय नहीं काटी जाती है केवल एक वैराग्य से ही मोहरूपी बेड़ी काटी जावे है । राजकुमार कहता भया कुटुम्ब आदि लोग स्वप्न मात्र होने से मिथ्या हैं । इसलिये हे तपस्वीजी ! हमारे को किसी के साथ मोह नहीं है । मेरे को सब से वैराग्य हुआ है, क्योंकि वैराग्य का पुण्य, सुख, राज, लक्ष्मी के सुख से महान अधिक है ।

॥ तपस्वी का वचन ॥

राज, लक्ष्मी के सुख से वैराग्य का पुण्य, सुख महान अधिक है । यह कैसे जानना चाहिये ।

॥ राजकुमार का उत्तर ॥

हे तपस्वीजी ! ज्ञान, उपरति, वैराग्य ये तीनों जिस में होवें सो पूर्ण पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान प्रबल है, वैराग्य, उपरति न्यून हैं वह उससे थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें वैराग्य, उपरति है और ज्ञान नहीं है वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान, वैराग्य उपरति, तीनों नहीं हैं, सिद्धि और राज लक्ष्मी आदि प्राप्त हैं, वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । और जिसमें ज्ञान, वैराग्य, उपरति, सिद्धि आदि नहीं हैं, केवल राजलक्ष्मी प्राप्त है, वह उससे भी थोड़े पुण्य का फल है । याते हे तपस्वीजी ! इस प्रकार पूर्वोक्त विचार से राजलक्ष्मी आदि बूंद सुख से ज्ञान, वैराग्य आदि का महान अधिक समुद्ररूप अविनाशी सुख होवे है और विचार यह है राज लक्ष्मी तो पूर्वकृत प्रारब्ध से प्राप्त होवे है, पुरुषार्थ से प्राप्त होवे नहीं और वैराग्यरूपी पुण्य सुख तो पुरुषार्थ से प्राप्त होवे है । याते वैराग्यरूपी पुण्य बढ़ाने के लिये

सदा वैराग्य और अभ्यास का ही पुरुषार्थ करना चाहिये । काहेते वैराग्य ही परम तप है और राग से मन मैला होवे है, वैराग्य से मन निर्मल होवे है अर्थात् मन समाहित होवे है इसलिये वैराग्य ही परम पावन है याते वैराग्यवान ही सर्व बन्धनों से मुक्त होवे है ।

विचार यह है । जैसे सर्प में विष, मिर्च में तीक्षणता, अग्नि में उष्णता, नमक में क्षारता, लोभ में पाप, भोग में रोग रहता है तैसे ही राग वाले विक्षेप चित्त में क्लेश रहता है और जिस प्रकार सूरज में अन्धकार का, चन्द्रमा में ताप का, अमृत में विष का, मधुरता में कटुता का, जाग्रत में स्वप्न का, आकाश में फूल का और सिन्धु में धूल का अभाव रहता है उसी प्रकार उदासीनता वाले समाहित चित्त में क्लेशों का अभाव रहता है । कुमार कहता भया कि क्षणिक सुख राज लक्ष्मी नाशरूप का त्याग करके महान सुखरूप उदासीनता का ही हम सेवन करेंगे । जो पुरुष शाखा पर खड़ा होकर शाखा के मूल को काट रहा है जब शाखा गिरेगी तब वह पुरुष भी साथ ही गिरकर कष्ट पाता है, तैसे ही जो पुरुष धन आदि विषयों को पाप से संग्रह करके उनसे सुख की आशा करता है वह वर्तमान में भी दुखी रहता है और मर कर नरक भोगता है, याते धन आदि विषयों का राग छोड़ कर सदा भजन ही करना चाहिये याते वैराग्य विचार से दीनता से रहित हुआ जिज्ञासू निर्भय होवे है, और ब्रह्मचर्य से अंतःकरण सतो प्रधान होवे है । इसलिये ब्रह्मचर्य और ब्रह्मविचार का सेवन करता हुआ पूर्ण परमानन्द को प्राप्त होवे है । याते हे तपस्वीजी ! चेतन से भिन्न यावत अनात्म जगत स्वप्न समान मिथ्या है ।

हे तपस्वीजी ! जैसे छोटी नौका भी बड़ी नदी से पार कर

देती है, तैसे शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी बड़ी दुखरूपी नदीसे पार कर देती है।

॥ तपस्वी का वचन ॥

हे राजकुमार किस प्रकार शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी बड़े दुखों से छुड़ा देती है इसमें कोई उदाहरण सुनाओ।

॥ राजकुमार का वचन ॥

हे तपस्वीजी—अब उदाहरण सुनो, एक राजा का नाम मुञ्ज था, वह राज करता था, तिसका बड़ा भाई मृत्यु होगया, तिस बड़े भाई का बेटा भोजराज बारह वर्ष की उम्र में ही विद्या पढ़कर बहुत बुद्धिमान हो गया। तब मुञ्ज राजा को यह शंका हुई, कि यह भोज बहुत विद्या पढ़कर बड़ा होशियार हो गया, यह भोज हमारा राज लेकर के मेरे को अपने आधीन कर लेवेगा, याते अभी भोज को मरवा देना चाहिये। ऐसा विचार करके राजा मुञ्ज वज़ीर को बड़ा सख्त हुक्म देता भया, कि आज ही इसी वक्त भोज को जंगल में लेजाकर शीघ्र ही मरवा देवो और मृत्यु समय जो बात कहे लिखकर ले आना, और मृत्यु का निशान भी हमारे को दिखाना, इस प्रकार राजा ने वज़ीर को सख्त हुक्म दे दिया।

बज़ीर ऐसा हुक्म सुनकर बड़ा भयवान होता भया, कि बिना कसूर के भोज को मरवा देने का महान पाप लगेगा, इस प्रकार बज़ीर चिन्ता करता हुआ लाचार होकर नौकरों को साथ लेकर भोज को पकड़ कर बाहर जंगल में मारने के वास्ते ले जाता भया तब भोज ने वज़ीर को कहा, हमारे को दो घड़ी भगवान का भजन कर लेने दो तब वजीर ने कहा भजन कर लो, तब भोज स्नान करके भगवान के ध्यान में बैठ गया, भोज की अचल समाधी लग गई, तब

वज़ीर भोज को देखकर रोने लगा मन में विचार करता भया, आज निर्दोश भोज की मृत्यु हमारे हाथ से हुई, तो हमारे को नर्क मिलेगा, इस प्रकार बजीर पश्चात्ताप करता भया, इधर भोज समाधी से उत्थान होकर वज़ीर को कहता भया, अब हमारे शरीर को कत्ल करदो, तब वज़ीर निराश होकर बोलता भया।

दोहा—वज़ीर भोज को कहत हैं, तुम हो बुद्धीमान।
अब हम तुम दोनों बचें, ऐसा सोचो ज्ञान॥

भाव यह है—वज़ीर भोज को कहता भया, कि तुम बहुत बुद्धिमान हो तुम ही ऐसी युक्ति विचारो जिस करके हम तुम दोनों बच जावें तुम्हारी बुद्धि बहुत चतुर हैं, तब भोज, अपने बाँये हाथ की अँगुली चाकू से काट कर खून कटोरे में भर कर उस खून से ही कलम भर कर भोज-पत्र पर लिखने लगा, पत्रिका में भोज लिखता भया।

(१) हे चाचाजी—सतयुग में मानधाता राजा बड़ा प्रतापी होता भया, जिसने अपने रथ पर सवार हो कर सात परिक्रमा पृथ्वी पर करने से सात समुद्र बन गये, ऐसा प्रतापी मानधाता इस संसार से राज करके चला गया, मगर यह पृथ्वी उसके साथ नहीं गई, परन्तु हे चाचाजी जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते हमारे को तुम कत्ल करा रहे हो, वह निश्चय करके तुम्हारे साथ तो जरूर ही जावेगी।

(२) हे चाचाजी—त्रेतायुग में श्री रामचन्द्रजी बड़े प्रतापवान थे, जिन्होंने रावण के दश शीश काटे और ग्यारह हज़ार वर्ष राज करके इस जगत से चले गये यह पृथ्वी उनके साथ भी नहीं गई; परन्तु हे चाचाजी—जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते तुम हमारे को कत्ल करा रहे हो, तुम्हारे साथ तो निश्चय ही जावेगी।

(३) हे चाचाजी--द्वापरयुग में राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव चक्रवर्ती राज करके चले गये, यह पृथ्वी उनके साथ भी नहीं गई और अनेक राजे राज करके इस संसार से चले गये, यह पृथ्वी किसी के साथ भी नहीं गई, परन्तु हे चाचाजी ! जिस पृथ्वी के लोभ के वास्ते तुम हमारे को कत्ल करा रहे हो तुम्हारे साथ तो जरूर ही जावेगी, इस प्रकार की पत्रिका लिखकर के भोज ने वजीर को कहा यह पत्रिका चाचाजी को जाकर देदो, भगवान की कृपा से हम तुम दोनों बच जावेंगे, और खून के दाग़वाला यह दुपट्टा ले जावो मृत्यु का निशान दिखा देना, तब वज़ीर राजा के पास जाता भया, तब वजीर से राजा ने पूछा भोज को मरवा दिया वजीर ने कहा मरवा दिया और खूना का सना हुआ दुपट्टा वजीर ने राजा को मृत्यु का निशान दिखा दिया, तब राजा ने कहा मृत्यु के समय कुछ भोज ने कहा था, वजीर ने पत्रिका राजा के आगे धर दीनी, राजा पत्रिका को पढ़ता भया, सम्पूर्ण पत्रिका वैराग्य की लिखी हुई पढ़ चुका तब राजा का चित्त शुद्ध हो गया और पश्चाताप करता हुआ ऊँचे स्वर से रोने लगा और बारम्बार भोज के गुणों का कथन करता भया ।

दोहा—पत्रिका पढ़कर रोता, राजा मुझ अजान ।
राज साथ नहीं जायगा, शत्रू लोभ महान ॥
क़त्ल कराया भोज को, दया न उपजी आन ।
सुन्दर चतुर बालक अहे, भोज गुणों की खान ॥

भाव यह है—पत्र पढ़कर राजा विचार करता भया, बड़े भाई का बेटा एक ही था, और विद्या पढ़ा हुआ बहुत बुद्धिमान था बिना कसूर हमने मरवा दिया, और जिस राज के लोभ वास्ते यह अपराध

किया है, सो यह राज समाज साथ नहीं जावेगा, याते लोभ सबसे बड़ा शत्रु है, लोभ करके ही पाप होता है, पाप से जीव नर्क को चला जाता है, ऐसा बालक सुन्दर श्रेष्ठ गुणों की खान भोज को मरवा दिया, और मेरे मन में किंचित भी दया नहीं आई, याते सर्व पापों का मूल लोभ ही है इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ राजा रुदन करता भया, तब वजीर ने कहा, राजा साहब अब आपका ख्याल कैसा हो गया, तब राजा मुझ कहता भया, हे वजीर अगर इस समय भोज जीता होता तो हम भोज को राजगद्दी देकर बन में कल्याण के वास्ते भजन करने चले जाते परन्तु अब तो भोज मर चुका है अब क्या बने, तब वजीर कहता भया, हे राजा साहब आपका ऐसा ख्याल अगर पक्का हो गया है, तो भोज कुशलपूर्वक जीता हैं, तब प्रसन्न होकर राजा कहता भया शीघ्र ही भोज को ले आओ, तब वजीर भोज का धन्यवाद करता हुआ भोज को रथ पर बैठा कर बड़े उत्साहपूर्वक राजा के पासे ले गया, तब राजा भोज को राजगद्दी देकर आप भजन करने के लिये ईश्वर शरण बन को जाता भया, तब भोज मृत्यु से बचने की खुशी करके भगवान की प्रसन्नता अर्पण एक हजार गौ ब्राह्मणों को दान करता भया, और एक लाख मन अनाज गरीबों को दान करता भया ।

तब कुमार तपस्वी को कहता भया, कि जैसे छोटी नौका भी बड़ी अगाध जल की नदी से पार कर देती है, तैसे बड़े भयानक दुखों से शास्त्र की थोड़ी बुद्धि भी जीव को पार कर देती है, अर्थात् वैराग्यवाली भोज की बुद्धि से राजा और वजीर इस लोक में तो निन्दा से बच गये और परलोक में नर्क से बच गये और भोज मृत्यु से बचकर राजगद्दी को प्राप्त हुआ, ऐसी शास्त्र की बुद्धि स्तुति करते योग्य है जो बड़े दुखों से छुड़ा कर सुख प्राप्त कर देती है ।

राजकुमार कहता भया, जो पुरुष ऐसे झूठे कुटुम्ब के मोह से व्यवहार में पाप छल करते हैं। उनको परलोक में नर्क मिलता है और यहाँ दुख पाते हैं। इसी से धन स्त्री के मोह से धर्म का नाश कर देते हैं। परन्तु वह भाई, मित्र, धन आदि परलोक में साथ नहीं जायगे परलोक में तो पुण्य और पाप ही साथ जावेंगे। इसवास्ते जो धर्म की पालन नहीं करते कुटुम्ब की ही पालना पाप से करते हैं वह सदा दुखी रहते हैं और शांति के समान कोई तप नहीं है। और दया के समान कोई धर्म नहीं। तृष्णा के समान कोई रोग नहीं है और सन्तोष के समान कोई सुख नहीं है और पाप पुण्य दोनों छिपाने से बढ़ते ही जाते हैं और प्रगट करने से घटते ही जाते हैं। इससे पुण्य को छिपाना चाहिये और पाप को प्रगट करना चाहिये पाप का फल दुख जीव नहीं चाहते परन्तु पाप का त्याग नहीं करते कोई उत्तम पुरुष ही पाप का त्याग करता है और पुण्य का फल सुख तो सब जीव चाहते हैं, परन्तु पुण्य करते नहीं, कोई उत्तम पुरुष ही पुण्य करता है।

दोहा—रोटी देवे सन्त को, पुण्य गऊ सम जान।
खिलावे भोजन तृप्ति से, हज़ार द्विज तुल मान॥

भाव यह है—जो गृहस्थी भिक्षु और सन्तका 'नारायणहरी' शब्द सुनकर के भिक्षा रोटी शीघ्रता से देता है उसको गऊ दान करने का फल प्राप्त होता है और जो गृहस्थी आलस्य करके रोटी भिक्षा नहीं देता, ब्रह्मचारी, फकीर, भिक्षु और सन्त के निराश चले जाने का गृहस्थी को पाप लगता है। जो गृहस्थी महात्मा को तृप्ति से भोजन खिलाता है उस गृहस्थी को हजार ब्राह्मण का भोजन खिलाने का फल प्राप्त होता है।

दोहा—सेवा श्रद्धा से करे, प्रसन्न होय नित सन्त।
कामधेनु सौ जानिये, सेवा फल अनन्त॥

भाव यह है—जो गृहस्थी भक्त (श्रद्धा) प्रेम से महात्मा की रोज़ ही सेवा पूजन करके महात्मा को प्रसन्न करता है, उस भक्त को सौ कामधेनु गऊ की सेवा पूजन के समान फल प्राप्त होता है, इसलिये अपने कल्याण के वास्ते श्रद्धापूर्वक महात्मा की सेवा और संगति करनी चाहिये।

और हे तपस्वीजी अतिथि की सेवा के महातम में एक उदाहरण सुनो। हरदयाल नाम का एक भगत था वह जंगल में कुटी बनाकर भजन करता था और उसकी स्त्री सदा सेवा में लगी रहती थी और आये अतिथि सन्तकी प्रेम से दोनों सेवा करते रहते थे एक रोज़ भगवान उनकी परीक्षा करने के लिये शाम के वक्त वृद्ध सन्त का रूप बनाकर उनके पास आगये तब भगत ने सन्त को नमस्कार करके आसन पर बैठा दिया और अपनी स्त्री को कहा कि यह वृद्ध सन्त है और सरदी बहुत है और बाहर शेर का भी डर है याते कुटी के अन्दर सन्त का आसन लगा देना चाहिये और अपने दोनों को बाहर आसन कर लेना चाहिये। स्त्री ने कहा—'हे भगवान आपने बहुत अच्छा विचार किया है।' तब भगत ने सन्त को भोजन खिलाकर आसन कुटी के अन्दर कर दिया और आप दोनों कुटी से बाहर मैदान में आसन करते भये तब रात के बारह बजे एक शेर आया और भगत को मार कर चला गया तब उसकी स्त्री ने विचार किया कि पति हमारा अतिथि सन्त की सेवा में मृत्यु हो गया है। भगवान का हुक्म ऐसे ही था अब पति के संग सती हो जाना ही हमारा उत्तम धर्म है तब वह स्त्री चिता बना कर पति के साथ

सती होने को तैयार हुई तब सन्तरूप भगवान ने स्त्री को कहा अब तुम्हारा अतिथि सेवा जो गृहस्थ आश्रम का मुख्य धर्म है सो सम्पूर्ण हो गया तब भगवान ने उसके पति को जीवित कर दिया तब दोनों को भगवान का दर्शन होता भया और भगवान ने आर्शीर्वाद दिया कि तुम दोनों जन्म मरण से रहित हो कर मुक्त हो जाओगे इस प्रकार कह कर भगवान अंतरध्यान हो गये याते हे तपस्वीजी गृहस्थ आश्रम में अतिथि सेवा का महान पुण्य है याते जो भगत सावधान होकर अतिथि सन्तों की सेवा में तत्पर रहते हैं उनको दोनों लोक के सुख प्राप्त हो जाते हैं ।

दोहा—अतिथि सब का गुरू है, तिसकी करे जो सेव ।
सुख पावे इस लोक में, अन्त मुक्ति को लेव ॥
खाली जांय जिन घरों से, ब्रह्मचारी अरु सन्त ।
घोर नर्क में पड़ेंगे, भोगें दुःख अनन्त ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

राजकुमार कहता भया—हे तपस्वीजी ! जो पुरुष केवल अपने शरीर के सुख के लिये दूसरों को दुख देते हैं वा पाप करते हैं, जैसे मांस आदि खाने के लिये जीवों का घात करते हैं वह पापी पुरुष खोटी योनियों को पावेंगे और नर्क का दुख भोगेंगे जो पुरुष पराई स्त्री के साथ शरीर करके भोग भोगते हैं उनको परलोक में लोहे के तप्त थम्बे (खम्बे) के साथ लगाकर जलाया जाता है । जो पुरुष कर्ज लेकर नहीं देते उनको अगले जन्म में नारी, पशु, नौकर बनकर बदला देना पड़ता है, जब तक कर्ज का बदला नहीं दिया जावेगा तब तक नहीं छूटेगा । और जो पुरुष धन और कुटुम्ब को ईश्वर का जानकर सदा धर्म को पालते हैं, भगवान को प्यारा

जानकर कुटुम्ब के साथ मोह नहीं करते और पाप से सदा बच जाते हैं और भजन में जिनकी प्रीति है वह दोनों लोकों में सुखी रहते हैं । जो धर्मात्मा पुरुष हैं वह इस लोक के विषयों में सुख का यत्न नहीं करते, केवल परलोक के सुख के वास्ते ही धर्म करते हैं तथा भजन करते रहते हैं वह दोनों लोकों में सुखपाते हैं और जो लोग शरीर के सुखकी कोशिश करते हैं अर्थात् दुनिया के विषय सुख की चाह करते रहते हैं और सदा व्यवहारों की ही फिक्र करते रहते हैं और भजन नहीं करते, परलोक नहीं संभारते, वह दोनों लोकों में दुखी रहते हैं, याते इसलोक के सुख की इच्छा को त्यागकर परलोक के सुख के वास्ते ही पुण्य करना चाहिये, भजन करना चाहिये । जो पुरुष मोह में फँसकर पाप छल करते हैं वह पापी पुरुष हीरा जन्म को गंवाकर चौरासी के चक्कर में आकर जन्मते मरते हैं । और जो पुण्यात्मा पुरुष हैं वह धर्म के वास्ते पुत्र, स्त्री, धन से मोह नहीं करते, उनको धर्म ही प्यारा है जैसे हरिश्चन्द्रराजे आदि अनेकों ही भक्त पुण्य परायण होकर कुटुम्ब का मोह छोड़कर धर्म की पालना करते रहे । उनकी कथा सुनकर पाप नाश होते हैं, क्योंकि धन की शक्ति, शरीर की शक्ति, वाणी की शक्ति, बुद्धि की शक्ति, परमात्मा ने जीवों को धर्म करने वास्ते, भजन करने के वास्ते ही दी है । इस लिये जीवों को धर्म करना और भजन करना ही उचित है । और सम्बन्धियों का संग त्याग कर ईश्वर परायण ही होना चाहिये । इस से हे तपस्वीजी ! विचार यह है कि एक चोर था—जब वह मृत्यु होने लगा तब अपने पुत्र को उपदेश करता भया कि हे पुत्र तुम बराबर चोरी करते रहना और जहाँ कथा होती होवे वहाँ भूल कर भी न जाना । तब पुत्र ने कहा हे पिताजी कहीं

रास्ते में कथा हो रही हो तब क्या करना चाहिये । तब पिता पुत्र को कहता भया । हे पुत्र उस समय कानों में उंगली दे लेनी अर्थात् कान बन्द कर लेने जिससे कानों में कथा की बातें ना पड़ जावें ऐसा उपदेश करके चोर मृत्यु को प्राप्त हो गया, पीछे उस चोर का पुत्र रात को राजा का बहुत सा धन चोरी करके ला रहा था । रास्ते में मंदिर में कथा हो रही थी—तब उस पुत्र ने अपने पिता का उपदेश याद करके उंगली से कान बन्द कर लिये परन्तु जब कथा के पास पहुँचा तो देव गति से चोर के कांटा लग गया जब चोर कान से उंगली निकाल कर कांटा निकालने लगा तो कथा में उस वक्त पंडितजी यह उपदेश कर रहे थे कि देवताओं की परछाई नहीं पड़ती और नेत्रों के पलक नहीं झपते यह उपदेश उस चोर के कान में भी पड़ गये और चोर अपना कांटा निकाल कर कानों को उंगली से बन्द कर घर को गया और धन को किसी गुप्त जगह रख दिया । प्रातःकाल राजा के सिपाहियों ने उसे पकड़ कर राजा के सामने खड़ा किया तब राजा ने चोर से पूछा तूने चोरी की है? तब चोर ने कहा मैंने चोरी नहीं की । राजा ने चोर को कैद में भी भेज दिया मगर चोर ने चोरी करने से इन्कार कर दिया तब राजा ने एक कुटनी बुलाकर कहा कि तुम इस चोर का पता लगाओ कि इसने चोरी की है या नहीं तब कुटनी राजा से हाँ करके चली गई और रात्रि को वह देवी का रूप बनाकर जेलखाने में दीपक हाथ में लेकर चोर के पास जाकर कहने लगी कि—'हे बेटा मैं देवी माता हूँ । तू मुझको ठीक बतादे कि तूने चोरी की है या नहीं अगर तु ठीक बतावेगा तो तुझे जेल से निकाल दूँगी और झूंठ बोलेगा तो श्राप देकर भस्म कर दूँगी । तब चोर उसको देवी माता समझकर ठीक २ कहने को तैयार हुआ तब कथा का उपदेश याद आ गया कि

देवता की परछाई नहीं पड़ती और नेत्रों के पलक नहीं झपते । इस देवी की परछाई भी पड़ती है और पलक भी झपते हैं, याते यह देवी नहीं है कोई छलरूप कुटनी है । ऐसा जानकर चोर कुटनी से कहने लगा कि देवी माता मैंने चोरी नहीं की है अगर मैं चोरी करता तो कह देता । तब कुटनी को विश्वास होगया कि इसने चोरी नहीं की अगर करता तो मेरे रूप को देखकर जरुर बता देता । ऐसा निश्चय कर कुटनी राजा से जाकर कहती भई । राजा इसने चोरी नहीं की है, मैंने परीक्षा करली है । तब राजा ने कुटनी के कहने से चोर को छोड़ दिया—तब चोर अपने घर आकर विचार करने लगा कि हमारा पिता महान मूर्ख था जो कथा में जाने से रोकता था—ऐसी कथा जिसके एक वाक् ने हमारे को कैद से छुडा दिया—और धन भी बच रहा—याते अब हम चोरी को छोड़ कर ईश्वर परायण होकर कथा सत्संग में ही जाया करेंगे—हे तपस्वीजी ऐसा विचार कर वह चोर रात दिन ईश्वर का भजन करता और कथा सुनता हुआ और वर्तमान काल में सुख से कुटुम्ब का पालन करता हुआ अन्त समय मोक्ष को प्राप्त हो गया—याते हे तपस्वीजी भगवान की कथा सुनने का महात्म वाणी से नहीं कहा जा सकता । कथा का एक वाक् कानों में जबरदस्ती पड़ जाने से भोग मोक्ष दोनों प्राप्त हो गये । हे तपस्वीजी ऐसा विचार कर हम तो कुटुम्ब का मोह त्याग कर अपना स्वधर्म ब्रह्म परायण ही होवेंगे कभी इस झूठे कुटुम्ब का मोह न करेंगे क्यों कि मुसाफिरों की तरह सम्बन्धियों का मेला है, अब वियोग होगया है तो हम क्या अफसोस करें । हे तपस्वीजी! इसपर तुमको एक उदाहरण सुनाता हूँ जिसके सुनते ही मोह शोक सब निवृत्त हो जावें हैं ।

एक बहुत बड़ा दरियाव था जिसमें नवका मुसाफिरों से भरी हुई थी, जल बहुत चढ़ा हुआ था और हवा भी बहुत जोर से चल रही थी, दरियाव के बीच में जब नवका आई तब डूबने लगी। तब एक बड़ा बलवान पुरुष नवका से निकल कर तैर करके पार चला गया, पीछे से मुसाफिरों से भरी हुई नवका दरियाव में डूब गई तब जो मुसाफिर तैर कर निकल गया था उसको मुसाफिरों सहित भरी हुई नवका के डूब जाने का कुछ भी अफसोस नहीं हुआ। इसी तरह हे तपस्वीजी! यह घर के सम्बन्धी पिछले जन्म के अज्ञात मुसाफिर हैं, घररूपी नवका धीरे धीरे भरगई अब संसार समुद्र के बीच कर्मरूपी वायु से और कालरूपी गम्भीर जल में अग्नि के निमित्त से घररूपी नवका सम्बन्धीरूपी मुसाफिरों करके भरी हुई एक समय ही डूब गई अर्थात् अग्नि के निमित्त से सारा कुटुम्ब जलकर नाश होगया इस प्रकार मुसाफिरों की तरह झूठे कुटुम्ब के नाश होने से हमारे को शोक नहीं हुआ। हमतो पहेले ही घर से निकल आये अब मैं लोगों का संग नहीं करूंगा। और कुटुम्ब का कभी स्मरण ही नहीं करूंगा सदा आत्म भगवान परायण ही रहूँगा और एकाकी जीवन मुक्त होकर विचरूंगा। तब तपस्वीजी राजकुमार का ऐसा विचार सुनकर धन २ करता हुआ कहता है हमने एक एक की परीक्षा करी है। मगर यह निश्चय हुआ है कि मोहजीत राजा का सारा कुटुम्ब ही निर्मोही है अब तपस्वी निराश होके भगवान की स्तुति करता भया।

॥ तपस्वी का वचन ॥

दोहा—क्या राजा क्या रंक है, क्या तपी को मान।
जिस पर प्रभु कृपा करें, सो मूर्ति भगवान ॥

अर्थ—तपस्वी कहता भया, हम तपस्या का क्या वृथा मान करें? चाहे राजा होवे चाहे कङ्गाल होवे, जिसपर भगवान कृपा करें, वह मोह रूपी जाल के दुखों से छूट जाता है। इस प्रकार मोहजीत राजा की कथा सम्पूर्ण हुई।

* इति शुभम् ॐ तत्सत् *

भजन

है कोई दम की बात जगत में है कोई दम की बात। टेक० ॥
मुट्ठी बाँधे आयौ जग में हाथ पसारे जात ॥ है० ॥
धन योवन सुख सम्पत्ति स्वप्ना संग न चल है गात ॥ है० ॥
पल पल घटना क्षण नहीं बढ़ना जाय वृथा दिन रात ॥ है० ॥
सम्हल तुम्हारे शिर पर रिपु है काल लगाये घात ॥ है० ॥
कहाँ गये वह संग सँगाती कहाँ गये पितु मात ॥ है० ॥
जग सराय में रहना थोड़ा उठ जाये परभात ॥ है० ॥
त्यागा धर्म कपट नहिं छोड़ा क्यों जग ठग ठग खात ॥ है० ॥
नवलसिंह जब अंत समय हो हाथ मले पछतात ॥ है० ॥

जिज्ञासू की प्रार्थना

दोहा—बारम्बार प्रणाम हो, सर्वज्ञ ईश अनूप।
दृष्टा सर्व अधार तू, प्रेरक चेतन रूप ॥१॥
अन्तरयामी सर्व का, सदा जीव के साथ।
इच्छा पूर्ण कीजिये, आप सर्व के नाथ ॥२॥
कृपासिन्धु दयाल जी, ब्रह्म स्वरूप अपार।
मुझ अनाथ की बीनती, करो जगत से पार ॥३॥
दुःख रूप संसार यह, जन्म-मरण की खान।
आप निकासो दयाकर, देर न कीजे आन ॥४॥

परम पिता जो आप हो, सदा हमारे साथ ।
गिरा अनादि भूल से, कोई न पकड़ें हाथ ॥५॥
दीजे बुद्धि विचार की, जानु अपना रूप ।
जन्म-मरण से रहित जो, पूरण शुद्ध स्वरूप ॥६॥
चेतन ब्रह्म अपार जो, सर्व अधार अनन्द ।
शुद्ध बुद्धि से जानिये, लखे नहीं मतिमन्दा ॥७॥
आठ पहर चिंतन करूं, विसरे नहीं क्षण एक ।
भगवन कृपा कीजिये, मनमें होय विवेक ॥८॥

कुण्डली

ताली बिन ताला न खुले, गुरु बिन होय न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहीं मुक्त है, ये सर्वत्र प्रमान ॥
ये सर्वत्र प्रमान, वेद भी ऐसे गावे ।
पढ़े गुरू बिन ग्रंथ नहीं अज्ञान नसावे ॥
कहे दास हरनाम, वृथा बाग बिन माली ।
होय न गुरु बिन ज्ञान, खुले न ताला बिन ताली ।

दोहा—आपे छन्द बनावता, आपे आप छपाय ॥
आपे छापे शोध के, आपे पाटक भाय ॥
कृपासिन्धु सब सन्त जन, कृपालु परम उदार ।
भूल-चूक जो हो कहीं, लीजे स्वयं सुधार ॥
या दुनिया में आय के, कर लीजे दो काम ।
देने को टुकडा भला, लेने को हरिनाम ॥

ॐ तत्सत् ब्रह्म अर्पणमस्तु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः !!!